Publisher:—

J. N. Yadava Proprietor,

Master Khelari Lal & Sons.,

Sanskrit Book Depot, Kachauri Gali Benares City.

Printer:—

N. P. Bharati,

Mahashakti Press, Bulanala, Benares City.

मास्टरमणिमालायाश्चत्वारिंशत्तमो मणिः (ज्यौतिषविभागे १३)

दैवज्ञप्रवरश्रीकेशवार्कप्रणीतं

विवाहवृन्दावनम् ।

श्री ५ मन्मिथिलेश-धौतवस्त्रप्रतिष्ठित-लब्धस्वर्णपदक-

चौगमानिवासि-काशीस्थसंन्यासिसंस्कृतपाठशालाध्यापक-

ज्यौ० आ० पं० श्रीसीतारामझाकृत-

'वसन्तलक्ष्मीसमाख्यया'

सरलसंस्कृतभाषाटीकया सहितम् ।

तच्च

काशीस्थ 'संस्कृत बुक्डिपो' इत्यस्याध्यक्षैः

'मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स' महोदयैः

'महाशक्ति' मुद्रणालये

प्रकाशितम् ।

प्रथमावृत्तिः] संवत् १९९२ [मूल्यं सपादरूप्यकम्

भूमिका ।

यह बात स्पष्ट है कि शुभ शीलवती स्त्री से ही गृहस्थों को अर्थ, धर्म और काम की प्राप्ति होती है अर्थात् मर्त्यलोक में रहने पर भी स्वर्ग सदृश सुख का अनुभव होता है। यदि स्त्री दुःशीला हुई तो नरक से भी अधिक दुःख भोगना पड़ता है। वह सुशीलता और दुःशीलता (सुभगता और दुर्भगता) स्त्रियों को विवाह लग्न के अनुसार ही प्राप्त होती है। जो दिव्यदृष्टि पूज्य महर्षियों ने हमलोगों के उपकारार्थ अपने अपने अनुभवानुसार निश्चित कर रखा है। इसलिये विवाह लग्न का सम्यक् विचार करना परमावश्यक है।

यद्यपि नारदादि महर्षियों की संहितानुसार वराहमिहिर, राम आदि आचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में विवाहसमय का निर्णय किया है, परञ्च उन ग्रन्थों में किसी किसी स्थलों में मतभेद देखकर दैवज्ञ केशवार्क ने—इस विवाहवृन्दावन नामक अपने ग्रन्थ में—वैवाहिक तिथि, नक्षत्र, योग, लग्न और षड्वर्ग आदि समस्त विषयों के सयुक्तिक शुभाशुभत्व प्रतिपादन करके इस प्रकार सिद्धान्त कर दिया है कि लोगों को वैवाहिक लग्न स्थिर करने में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता है।

वस्तुतः – विवाह वृन्दों (दशविध विवाहों) का अवन (रक्षण) इसीसे होता है इसलिये इसका अन्वर्थ नाम 'विवाहवृन्दावन' रखा गया। इस ग्रन्थ में पद लालित्य होने पर भी अर्थ काठिन्य है। अतः गणेश दैवज्ञ ने 'विवाहदीपिका' नामक विस्तृत संस्कृत टीका से उक्त काठिन्य को भी दूर कर दिया है। तथापि अल्प संस्कृतज्ञ लोगों को उससे सन्तोष नहीं हुआ। अतः काशी के विद्वद्वृन्द प्रेमी सुप्रसिद्ध संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष "मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स" महोदय के अनुरोध से मैंने "वसन्त-लक्ष्मी" नामक संक्षिप्त सरल संस्कृत और सविशेष भाषा टीका बनाई है। आशा है इसे सहृदयगण अपना कर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे। और इसमें प्रमादवश दृष्टि दोष या यन्त्रालय के दोष से कहीं कुछ त्रुटि रह गई हो तो उसे सुधार कर मुझे सूचित करने की अनुकम्पा करेंगे।

स्खलनं गच्छतः क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥ इति॥

विनीत—

श्रीसीताराम झा चौगमा (सम्प्रति काशी।)

भूमिका ।

यह बात स्पष्ट है कि शुभ शीलवती स्त्री से ही गृहस्थों को अर्थ, धर्म और काम की प्राप्ति होती है अर्थात् मर्त्यलोक में रहने पर भी स्वर्ग सदृश सुख का अनुभव होता है। यदि स्त्री दुःशीला हुई तो नरक से भी अधिक दुःख भोगना पड़ता है। वह सुशीलता और दुःशीलता (सुभगता और दुर्भगता) स्त्रियों को विवाह लग्न के अनुसार ही प्राप्त होती है। जो दिव्यदृष्टि पूज्य महर्षियों ने हमलोगों के उपकारार्थ अपने अपने अनुभवानुसार निश्चित कर रखा है। इसलिये विवाह लग्न का सम्यक् विचार करना परमावश्यक है।

यद्यपि नारदादि महर्षियों की संहितानुसार वराहमिहिर, राम आदि आचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में विवाहसमय का निर्णय किया है, परञ्च उन ग्रन्थों में किसी किसी स्थलों में मतभेद देखकर दैवज्ञ केशवार्क ने—इस विवाहवृन्दावन नामक अपने ग्रन्थ में—वैवाहिक तिथि, नक्षत्र, योग, लग्न और षड्वर्ग आदि समस्त विषयों के सयुक्तिक शुभाशुभत्व प्रतिपादन करके इस प्रकार सिद्धान्त कर दिया है कि लोगों को वैवाहिक लग्न स्थिर करने में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता है।

वस्तुतः – विवाह वृन्दों (दशविध विवाहों) का अवन (रक्षण) इसीसे होता है इसलिये इसका अन्वर्थ नाम 'विवाहवृन्दावन' रखा गया। इस ग्रन्थ में पद लालित्य होने पर भी अर्थ काठिन्य है। अतः गणेश दैवज्ञ ने 'विवाहदीपिका' नामक विस्तृत संस्कृत टीका से उक्त काठिन्य को भी दूर कर दिया है। तथापि अल्प संस्कृतज्ञ लोगों को उससे सन्तोष नहीं हुआ। अतः काशी के विद्वद्वृन्द प्रेमी सुप्रसिद्ध संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष "मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स" महोदय के अनुरोध से मैंने "वसन्त-लक्ष्मी" नामक संक्षिप्त सरल संस्कृत और सविशेष भाषा टीका बनाई है। आशा है इसे सहृदयगण अपना कर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे। और इसमें प्रमादवश दृष्टि दोष या यन्त्रालय के दोष से कहीं कुछ त्रुटि रह गई हो तो उसे सुधार कर मुझे सूचित करने की अनुकम्पा करेंगे।

स्खलनं गच्छतः क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥ इति॥

विनीत—

श्रीसीताराम झा चौगमा (सम्प्रति काशी।)

॥ श्रीः ॥

समर्पण—

आसील्लोके येन तुल्यो न चान्यः
काश्यां योऽभूत् सर्वमान्यो वदान्यः ।
विद्वद्वर्यो मण्डलीशो यतात्मा
श्रीगोविन्दानन्द-संज्ञो महात्मा ॥ १ ॥

यस्माद् भीता नास्तिका यान्ति दूरं
दृष्ट्वा यद्वन्नागवर्गा मयूरम् ।
साक्षाद् ब्रह्मैवास्तिका यं वन्दन्ति
सर्वे विद्वांसः सदैवानमन्ति ॥ २ ॥

वाराणस्यां येन चैका विशाला
वेदाङ्गानां स्थापिता पाठशाला ।
अन्यत्रान्याश्चापि शाखास्तदीया
जागर्त्यद्याप्यत्र कीर्तिर्यदीया ॥ ३ ॥

कुर्वन् कल्याणानि नित्यं जनानां
संसारेऽस्मिन् यः शतं हायनानाम् ।
जीवन् मुक्तो मोहमात्सर्यहीनः
काश्यामन्ते योऽभवद् ब्रह्मलीनः ॥ ४ ॥

तल्लब्धबोधस्तच्छिष्य-स्तच्छीलगुणसंयुतः ।
जितेन्द्रियः प्रशान्तात्मा ब्रह्मविज्ञजनैर्नुतः ॥ १ ॥
श्री 'जयेन्द्रपुरी' नाम सतां संन्यासकर्मणाम् ।
मण्डलेशत्वमासाद्य काश्यां विजयते तराम् ॥ २ ॥
यस्योक्तपाठशालायां नित्यं पाठयता मया ।
केशवार्ककृतौ व्याख्या कृता भाषार्थसंयुता ॥ ३ ॥
नाम्ना 'वसन्तलक्ष्मीः' सा भक्त्या तस्मै समर्प्यते ।
नतेन मिथिलावासि—श्रीसीतारामशर्मणा ॥ ४ ॥
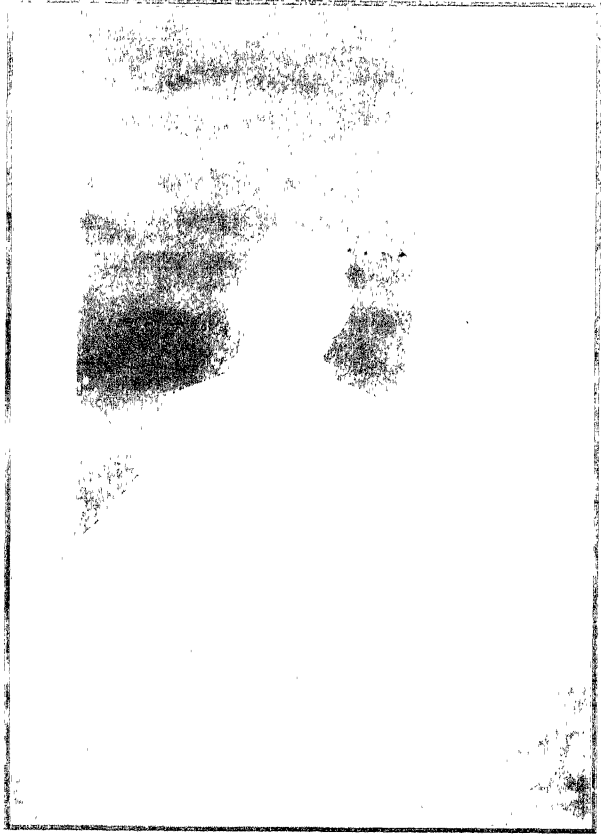
❀ अथ विवाहवृन्दावनस्थविषयाऽनुक्रमणिका ❀

इति विषयानुक्रमणिका ।

॥ श्रीः ॥

विवाहवृन्दावनम् ।

वसन्तलक्ष्मीसहितम् ।

टीकाकारकृतमङ्गलाचरणम्—

श्रीनन्दनन्दनपदे हृदये निधाय रम्ये विहर्तुमनिशं शिशुकोकिलानाम् ।
श्रीकेशवार्करचिते विमले विवाह-वृन्दावने विरचयामि वसन्तलक्ष्मीम् ॥

ग्रन्थकारकृतमङ्गलाचरणम्—

श्रीशार्ङ्गिणोः सृजतु वो नवसन्निवेशः
क्लेशव्ययं चलवलन्नयनाञ्चलश्रीः ।
यत्राञ्चल - ग्रथन - मङ्गल - माचचार
शृङ्गारहारमणिकौस्तुभरश्मिगुम्फः ॥ १ ॥

सं०—श्रीशार्ङ्गिणोः (श्रीश्च शार्ङ्गी चेति श्रीशार्ङ्गिणौ तयोः श्रीशार्ङ्गिणोः लक्ष्मीनारायणयोः) स नवसंनिवेशः (नूतनसङ्गमः) वः (युष्माकं) क्लेशव्ययं (सुखं) सृजतु (करोतु) । कथंभूतः स नवसंनिवेशः— चलवलन्नयनाञ्चलश्रीः (चलाश्च वलन्तश्च नयनाञ्चलाः नेत्रप्रान्तास्तेषां श्रीःशोभा यस्मिन् स तथोक्तः) पुनः किंभूतः—यत्र (यस्मिन् नवसंनिवेशे) शृङ्गारहारमणि-कौस्तुभरश्मिगुम्फः (शृङ्गारहारमणिश्च कौस्तुभश्चेति शृङ्गारहारमणि-कौस्तुभौ तयोः रश्मीनां गुम्फः = गुम्फनं-ग्रथनं) अञ्चलग्रथनमङ्गलं (अञ्चलयोः 'प्रावृतवस्त्रप्रान्तयोः' ग्रथनमेव मङ्गलं तत्) आचचार (आचीर्णवान् = कृतवानित्यर्थः) ॥ १ ॥

भा०—चलते और लौटते हुए नेत्र प्रान्तों की शोभा है जिसमें ऐसा श्री (लक्ष्मी) और नारायण का प्रथम समागम आप लोगों के क्लेश को दूर करे । जिस नव समागम में लक्ष्मीजी के शृङ्गार हारस्थित मणि के रश्मि (किरण), और भगवान् नारायण के कौस्तुभमणि के किरण, इन दोनों का गुम्फ (परस्पर मिलन) ही ने अञ्चलग्रथन (गाँठ बन्धन) रूप मङ्गलाचरण किया ॥ १ ॥

अथ ग्रन्थस्य वैशिष्ट्यं कथयति—

संवर्ग्य गर्गभृगुभागुरिरैभ्यगीर्भ्यः
सारं वराहमिहिरादिमतानुसारम् ।
स्फारत्स्फुरत्परिमलाढ्यफलं विवाह-
वृन्दावनं विरचयामि विचाररम्यम् ॥ २ ॥

सं० गर्ग-भृगु-भागुरि-रैभ्य-गीर्भ्यः सारं (तत्त्वं) संवर्ग्य (संकलय्य) वराहमिहिरादिमतानुसारं (वराहमिहिरादीनां, आदिशब्दात्—श्रीपति-लल्लाद्याचार्याणां—मतं अनुसरतीति तथोक्तं) स्फारत्स्फुरत्परिमलाढ्यफलं (स्फारन्ति-विस्तृतानि, स्फुरन्ति विकसितानि, परिमलाढ्यानि फलानि 'सदसद्रूपाणि' यस्मिन् तत्तथोक्तं) विचारम्यं (विचारेण सदसद्विवेकेन रम्यं मनोहरं, वनपक्षे तु विचारेण—वीनां पक्षिणां चारेण-संचारेण रम्य-मिति' एवं भूतं) विवाहवृन्दावनं (विवाहानां वृन्दं अवतीति तथोक्तं) विरचयामि ॥ २ ॥

भा०—गर्ग, भृगु, भागुरि, रैभ्य इन सब मुनियों के वचनों के तत्व संकलन करके वराहमिहिर, श्रीपति लल्ल आदि आचार्यों के मतानुसार विस्तृत रूप से विकसित परिमल से युक्त फल है जिसमें इस प्रकार सद्विचारों से रमणीय विवाह-वृन्दावन नामक ग्रन्थ को मैं बनाता हूँ ॥ २ ॥

अथादौ विवाहविहितनक्षत्राणि कथयति—

ध्रुवानुराधामृगमूलरेवती-करं मघास्वातिरदूषणो गणः ।
रवेरमीना मकरादिषड्गृही करग्रहे मङ्गलकृन्मृगीदृशाम् ॥ ३ ॥

सं०—ध्रुवानुराधामृगमूलरेवतीकरं (ध्रुवाणि-अनुराधा-मृगशिरा-मूलं रेवती करो हस्तः एषां समाहारद्वन्द्वे नपुंसकत्वं) मघा, स्वातिः 'अयं' गणः (एकादशनक्षत्रसमूहः) 'यदि' अदूषणः (दोषरहितः) स्यात् तदा मृगीदृशां (स्त्रीणां) करगृहे (विवाहे) मङ्गलकृत् स्यात् । तथा च रवेः (सूर्यस्य) अमीना (मीनरहिता) मकरादिषड्गृही (मकरादीनां षड्गृहाणां समाहारो मकरादिषड्गृही चैत्ररहितमुत्तरायणमित्यर्थः) मृगीदृशां (स्त्रीणां) करग्रहे (विवाहे) मङ्गलकृत् भवति ॥ ३ ॥

भा०—ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा रोहिणी), अनुराधा, मृगशिरा, मूल,

रेवती, हस्त, मघा, और स्वाती ये ११ नक्षत्र यदि वेधादि दोषों से रहित हों तो स्त्रियोंके पाणिग्रहणमें मङ्गलकारक होते हैं । तथा मीनको छोड़कर मकरादि ६ राशियों में (अर्थात् मकर, कुम्भ, मेष, वृष, मिथुन में) सूर्य हों तो विवाहमें मङ्गलकारक होते हैं ॥ ३ ॥

विवाहे पूर्वफाल्गुनीपुष्यौ कैश्चिदुक्तौ तद्दोषं कथयति—

प्राचेतसः प्राह शुभं भगर्क्षं सीता तदूढा न सुखं सिषेवे ।
पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव प्रजापतेराप स शापमस्मात् ॥ ४ ॥

सं०—प्रचेतसोऽपत्यं (प्राचेतसो मुनिः) भगर्क्षं (पूर्वाफाल्गुनी-नक्षत्रं) शुभं प्राह, परन्तु तदूढा (तस्मिन् भगर्क्षे विवाहिता) सीता सुखं न सिषेवे, अर्थात् वनवासादि दुःखमेव प्राप्तवती, तस्मात् तत् त्याज्य-मेव । पुष्यस्तु अतिकाममेव पुष्यति (वर्द्धयति) अस्मात् स (पुष्यः) प्रजा-पतेः (ब्रह्मणः) शापं आप प्राप्तवान्, अतः पुष्योऽपि त्याज्य एवेत्यर्थः ॥

भा०—प्राचेतस मुनि ने पूर्वफाल्गुनी को विवाह में शुभ कहा है, परञ्च उसमें विवाहिता सीता ने सुख का सेवन नहीं किया । तथा पुष्य नक्षत्र तो अत्यन्त काम को ही बढ़ाता है इसलिये ब्रह्मा ने उसे शाप दिया है । सिद्ध हुआ कि ये दोनों नक्षत्र विवाह में त्याज्य हैं । इसलिये नारदादि मुनियों ने इन दोनों को विवाह में विहित नहीं कहा ॥ ४ ॥

विशेष—ब्रह्मपुराणादि में प्रसिद्ध है कि—पार्वतीजी के सौन्दर्य देखकर ब्रह्माजी मोहित हो गये पश्चात् ज्ञान होने पर उन्होंने विचार किया कि मेरा विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ था इसी से काम की अधिकता हुई है इसलिये ब्रह्माजी ने पुष्य-नक्षत्र को शाप देकर विवाह में निषेध कर दिया ॥ ४ ॥

अथ विवाहेऽन्यमतं निरस्य स्वमतमाह—

प्रावृड्वसन्तोर्जसहःकरग्रहः परैरुदाहारि न हारि तन्मतम् ।
रवेरवैसारिणमुत्तरायणं पुरन्ध्रिपाणिग्रहणे परायणम् ॥ ५ ॥

सं०—परैः (अन्याचार्यैः) प्रावृड्वसन्तोर्जसहःकरग्रहः (प्रावृड्-वर्षा, वसन्तःप्रसिद्धः, ऊर्जः कार्तिकः, सहा मार्गशीर्षः एषु करग्रहः विवाहः) उदाहारि (उक्तः) 'परञ्च' तन्मतं न हारि (न मनोहरम्) । यतो रवेः (सूर्यस्य) अवैसारिणं (मीनरहितं) उत्तरायणं (मकरादिराशिषट्कमेव) पुरन्ध्रिपाणिग्रहणे (स्त्रीणां विवाहे) परायणं (श्रेष्ठं, बहुसम्मतत्वात्) ॥५॥

भा०—वात्स्य आदि अन्य आचार्यों ने वर्षा और वसन्त ऋतु, कार्तिक तथा मार्गशीर्ष विवाह में विहित कहा है। परन्तु उनका यह मत ठीक नहीं है। क्यों कि मीन को छोड़कर सूर्य का उत्तरायण काल ही स्त्रियों के विवाह में अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऐसा बहुत मुनियों का सम्मत है। अर्थात् अल्पसम्मति होने के कारण वर्षाऋतु विवाह में त्याज्य है॥ ९॥

अथ विवाहे पञ्चशलाकावेधमाह—

याम्योत्तराः प्रागपराश्च पञ्च द्वे द्वे च रेखे रचयेद्विदिक्षु।
विदिग्द्वितीयार्गलिताग्नितारः सहाभिजित् तत्र भवेद्भवर्गः॥ ६॥

सं०—पञ्च याम्योत्तराः, पञ्च प्रागपराश्च रेखाः, द्वे द्वे रेखे च विदिक्षु (कोणेषु) रचयेत्। तत्र (तस्मिन् चक्रे) विदिग्द्वितीयार्गलिताग्नितारः (विदिशि द्वितीयया 'रेखया'ऽर्गलिता बद्धाऽग्नितारा कृत्तिका यस्य स तथोक्तः) सहाभिजित् (अभिजित्सहितः) भवर्गः (नक्षत्रसमूहः) भवेत्॥ ६॥

भा०—५ याम्योत्तर, ५ पूर्वापर और दो, दो रेखायें कोण में न्यास करे। इस प्रकार पञ्चशलाका चक्र में कोण वाली दूसरी रेखा में कृत्तिका नक्षत्र लिखकर क्रम से अभिजित समेत सब नक्षत्रों को लिखै॥ ६॥

स्पष्टार्थ चक्र—
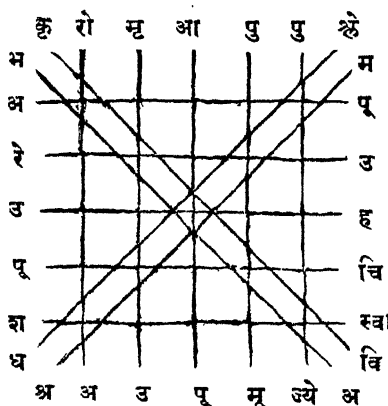
तस्मिन्नभिन्नाग्रगतं भिनत्ति ग्रहो विवाहर्क्षमशेषमेव।
स्त्रीपुंसयोरायुरसौम्यवेधः सौम्यव्यधो हन्ति सुखानि शश्वत्॥७॥

सं०—तस्मिन् (चक्रे) ग्रहः अभिन्नाग्रगतं (एकरेखाग्रगतं) विवहार्क्षं अशेषमेव (समस्तमेव) भिनत्ति (वेधयति), 'तत्रापि' असौम्यवेधः (पापग्रहवेधः) स्त्रीपुंसयोः (कन्यावरयोः) आयुः हन्ति, सौम्यव्यधः (शुभग्रहवेधः) शश्वत् (सर्वदा) सुखानि हन्ति (नाशयति) ।

भा०—उक्तपञ्चशलाकाचक्र में—जिस रेखा में ग्रह हो उस रेखा के अग्रगत विवाहविहित सम्पूर्णनक्षत्र को वेधित करता है । उसमें भी पापग्रह कृतवेध वर कन्या की आयु और शुभग्रहकृत वेध वरकन्या के सुख का नाश करता है ।

अभिजिन्मानं, सप्तशलाकावेधं चाह—

वैश्वदैवतचतुर्लवः श्रवःपञ्चभूलव इहाभिजिन्मितिः ।
अन्यतः परिणयादयं व्यधः सप्तरेखवलये विलोक्यते ॥ ८ ॥

सं०—वैश्वदैवतचतुर्लवः (उत्तराषाढचतुर्थांशः) श्रवःपञ्चभूलवः (श्रवणस्य पञ्चदशांशः) इह अभिजिन्मितिः स्यात् । अयं व्यधः (वेध-विचारः) परिणयादन्यतः (विवाहादन्यत्र) सप्तरेखवेलये (सप्तशलाकके चक्रे) विलोक्यते ॥ ८ ॥

भा०—उत्तराषाढ के चतुर्थ चरण और श्रवण के आदि में पञ्चदशांश अभिजित् नक्षत्र का मान है । विवाह से भिन्न शुभकार्यों में यह वेध सप्तशलाका चक्र में देखा जाता है ॥ ८ ॥ सप्तशलाका चक्र यथा—

अथावश्यके चरणवेधं कथयति—

स किल वेधविधिर्द्वितृतीययोश्चरणयोर्मिथ आदिचतुर्थयोः ।
अशुभविद्धमशेषमुडु त्यजेत् चरणगं शुभवेधमसंपदि ॥ ९ ॥

सं०—स वेधविधिः द्वितृतीययोश्चरणयोः तथा आदिचतुर्थयोश्चरणयोर्मिथः परस्परं ज्ञेयः । अशुभविद्धं (पापग्रहविद्धं) उडु (नक्षत्रं) अशेषं (समस्तं) त्यजेत् । तथा असम्पदि (अन्यनक्षत्रालाभे = आवश्यके) शुभवेधं (शुभग्रहवेधं) चरणगं (यस्मिन् चरणे वेधस्तं चरणमेव) त्यजेत् ॥ ९ ॥

भा०—उपरोक्त वेधविधि द्वितीय और तृतीय चरण में तथा प्रथम और चतुर्थ चरण में परस्पर समझना । पापग्रहसे वेधित समस्त नक्षत्रको त्याग देना चाहिये तथा परमावश्यकमें शुभग्रह से विद्ध नक्षत्रके चरणमात्र त्याग करे ॥९॥

अथ दोषान्तराणि कथयति—

यदशुभैर्गतगम्यमधिष्ठितं यदपि च त्रिविधाद्भुतदूषितम् ।
तरणितारकतोऽपि चतुर्दशं तदखिलेपि खलं शुभकर्मणि ॥१०॥

सं०—यत् 'नक्षत्रं' अशुभैः (पापग्रहैः) गतं (भुक्तं), गम्यं (भोग्यं), अधिष्ठितं (युतं) यदपि च त्रिविधाद्भुतदूषितं (त्रिविधैः दिव्यभौमाऽन्तरिक्षैः अद्भुतैरुत्पातैः दुष्टं) तरणितारकतः (सूर्यनक्षत्रतः) चतुर्दशं तत् अखिलेपि (समस्तेऽपि) शुभकर्मणि खलं (दुष्टं) स्यात् ।

भा०—पापग्रह जिस नक्षत्र को छोड़ दिया हो, जिसमें जाने वाला हो तथा जिसमें वर्तमान हो ये तीनों नक्षत्र तथा त्रिविध (दिव्य भौम, आन्तरिक्ष) उत्पातों से दूषित नक्षत्र, तथा सूर्य नक्षत्र से १४ वाँ नक्षत्र जो हो ये नक्षत्र सब शुभकार्यों में अशुभ हैं ॥ १० ॥

अथ लत्तादोषं कथयति—

रविनखैर्मितमर्कविधुन्तुदौ मुनिभिरिन्दुरखण्डलमण्डलः ।
हुतवहाकृतिषड्जिनदन्तिभिः क्षितिसुतादभिलत्तयति ग्रहः ॥११॥

सं०—अर्कविधुन्तुदौ (सूर्य-राहू) 'क्रमेण' रविनखैर्मितं (द्वादशं, विंशतितमं नक्षत्रं अभि (सम्मुखं) लत्तयतः, रविः स्वाक्रान्तात् द्वादशं, राहुश्च विंशतितमं नक्षत्रं लत्तयतीत्यर्थः । अखण्डलमण्डलः (पूर्णमण्डलः) इन्दुश्चन्द्रः मुनिभिर्मितं (सप्तमं) नक्षत्रं अभि लत्तयति । तथा क्षितिसुतात (मङ्गलमारभ्य) ग्रहः 'क्रमेण' हुतवहा-ऽऽकृति-षड्-जिन-दन्तिभिर्मितं 'नक्षत्रं' अभि लत्तयति ॥११॥

भा०—सूर्य अपने नक्षत्र से १२ वाँ, और राहु २० वाँ, पूर्ण चन्द्रमा ७ वाँ, मङ्गल ३ रा, बुध २२ वाँ, बृहस्पति ६ ठा, शुक्र २४ वाँ और शनि ८ वाँ नक्षत्र को सामने से लक्षित करता है ॥११॥

पूर्वाचार्यैः पृष्ठलत्तनं यदुक्तं तत्कारणं कथयति—

इति सति द्युसदामभिलत्तने यदनुलत्तनमुक्तमृषिव्रजैः।
तदुडुपश्चिमपूर्वविभागयोरनधिकाधिकदोषविवत्तया ॥१२॥

सं०—इति (एवं) द्युसदां (ग्रहाणां) अभिलत्तने (सम्मुखलत्तने) सति ऋषिव्रजैः (मुनिगणैः) अनुलत्तनं (पृष्ठलत्तनं) यदुक्तं, तत् उडुपश्चिमपूर्वविभागयोः (नत्तत्रस्योत्तरार्धपूर्वार्धयोः) अनधिकाधिकदोषविवत्तया उक्तम्। अर्थात् सम्मुखलत्तने नत्तत्रोत्तरार्धेऽल्पदोषः पूर्वार्धेऽधिकदोषः, पृष्ठलत्तने नत्तत्रस्योत्तरार्धेऽधिकदोषः, पूर्वार्धेऽल्पदोष इत्यर्थः ॥१२॥

भा०—इस प्रकार ग्रहों के सम्मुखलत्ता होने पर भी मुनिगणों ने जो पृष्ठलत्ता दोष कहा वह नक्षत्र के उत्तरार्ध और पूर्वार्ध में अल्पाधिक दोष विवक्षा से।

अर्थात् लत्तादोष से दूषित सम्पूर्ण नक्षत्र त्याज्य है उसमें भी पृष्ठलत्ता वाले नक्षत्रों के पूर्वार्ध में अल्प और उत्तरार्ध में अधिक दोष, तथा सम्मुखलत्ता वाले नक्षत्रों के उत्तरार्ध में अल्प और पूर्वार्ध में अधिक दोष है। इसलिये पूर्वाचार्यों ने पृष्ठलत्ता भी कहा है। यहाँ ग्रन्थकार ने समस्त नक्षत्र को दूषित समझकर केवल सम्मुखलत्ता ही कहा ॥१२॥

अथ लत्तादोषस्य फलमाह—

उडुनि निर्दलिते शुभलत्तया न फलमस्ति बलस्य गलत्तया।
अशुभलत्तितमत्ति तदूढयो-र्धनसुतानसुतापकरं परम् ॥१३॥

सं०—उडुनि (नत्तत्रे) शुभलत्तया निर्दलिते सति बलस्य गलत्तया फलं (नत्तत्रोक्तं शुभं फलं) नास्ति। अशुभलत्तितं 'नत्तत्रं' तु तदूढयोः (तत्र विवाहितयोः कन्यावरयोः) परं असुतापकरं (प्राणसन्तापदं) भवति, धनसुतान् अत्ति (खादयति नाशयतीत्यर्थः) ॥१३॥

भा०—शुभग्रह से लक्षित नक्षत्रों में बल के ह्रास होने के कारण उन नक्षत्र का शुभ फल नहीं होता है। तथा पापग्रह से लक्षित नक्षत्र में विवाहित वर कन्या के प्राण का सन्ताप और धन पुत्र का नाश होता है ॥१३॥

अथैकार्गलादोषमाह—

विद्धा त्रयोदशभिरूर्ध्वगतैकरेखा
खार्जूरिकं तदिह शीर्षभतो भचक्रे ।
न्यस्ते सहाभिजिति तारकराजभान्वो-
स्तुल्यर्क्षगम्यगतयोर्नयनार्गलेयम् ॥१४॥

सं०—ऊर्ध्वगतैकरेखा त्रयोदशभिः 'तिर्यग्रेखाभिः' विद्धा सती खार्जूरिकं 'चक्रं' भवति । तदिहास्मिन् चक्रे शीर्षभतः (वक्ष्यमाणशीर्षनक्षत्रात्) सहाभिजिति (अभिजित्सहिते) भचक्रे न्यस्ते सति तुल्यर्क्षगम्यगतयोः तारकराज-भान्वोः (सूर्यचन्द्रयोः) एकरेखास्थयोरियं नयनार्गला (एकार्गलाख्यदोषो) भवति । रविचन्द्रयोर्मध्ये एकस्य नक्षत्रं यावद्गतं तावदेवान्यस्य गम्यं चेत्तदैवायं दोष इत्यनेनात्र पादवेधः सूचितः ।

भा०—एक ऊर्ध्वाधर रेखा को १३ तिरछी रेखा से वेध करने पर खार्जूर नामक चक्र होता है । इस चक्र में आगे कहे हुए शीर्ष नक्षत्र से आरम्भ कर अभिजित् सहित २८ नक्षत्रों का न्यास करने पर यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखा में पड़ें तथा एक के नक्षत्र का गत और दूसरे का गम्य तुल्य हो तो 'यह नयनार्गला (परस्पर दृष्ट्यर्गला अर्थात् एकार्गला) नामक दोष होता है ॥१४॥

अथ शीर्षनक्षत्रज्ञानं तथैकार्गलाफलं चाह—

शीर्षभं भवति रूपसंयुता दुष्टयोगमितिरर्द्धिता सती ।
शेषिणी यदि च सार्द्धविश्वयुङ्मङ्गलङ्गलति सार्गले विधौ ॥१५॥

सं—"इयमर्गला व्याघातादिदुष्टयोगे सति ज्ञेयेति, दुष्टे योगे सति"—सा दुष्टयोगमितिः (विष्कम्भादिदुष्टयोगावधिसंख्या) रूपसंयुता (एकयुता) अर्धिता सती शीर्षभं (शीर्षनक्षत्रं) भवति । यदि साऽर्धिता शेषिणी (शेषसहिता) भवेत्, तदा सार्धविश्वयुक् (सार्धत्रयोदशसहिता सती) शीर्षभं ज्ञेयम् । एवं विधौ चन्द्रे सार्गले सति मङ्गलं (विवाहादिशुभकार्यं) गलति (नश्यति) ॥१५॥

भा०—व्याघातादि दुष्टयोग की संख्या में १ जोड़ कर आधा करने से जो संख्या हो वही शीर्ष नक्षत्र होता है । यदि आधा करने से शेष युत संख्या हो तो उसमें १३॥ साढ़े तेरह जोड़ने से शीर्ष नक्षत्र होता है । इस प्रकार चन्द्रमा अर्गलायुक्त हो तो विवाहादि मङ्गल कार्य का नाश होता है ॥१५॥

वि०—व्याघात आदि दुष्टयोग में जब सूर्य नक्षत्र से अभिजित् सहित गणना करने से चन्द्रमा विषम नक्षत्र में पड़े तभी यह योग होता है। सम संख्य नक्षत्र में पड़ने से नहीं होता है। इसलिये रामाचार्य ने मुहूर्तचिन्तामणि में सरल प्रकार कहा है यथा—

व्याघात-गण्ड-व्यतिपातपूर्वे शूलाऽन्त्य-वज्रे परिघाऽतिगण्डे ।
योगे विरुद्धे त्वभिजित्समेतः खार्जूरमर्काद् विषमे शशी चेत् ॥

उदाहरण—मानों व्याघात योग में रेवती में सूर्य और चित्रा में चन्द्रमा है तो सूर्य नक्षत्र रेवती से चन्द्र नक्षत्र चित्रा तक गिनने से विषम संख्या १५ हुई अतएव एकार्गला दोष हुआ।

अब इस ग्रन्थ के अनुसार व्याघात की संख्या १३ में १ जोड़कर आधा करने से ७ हुआ अतः अश्विनी से ७ वाँ पुनर्वसु शीर्ष नक्षत्र हुआ। अतः पुनर्वसु को चक्र के शीर्ष (मस्तक) पर लिखकर क्रम से अभिजित् समेत २८ नक्षत्रों को न्यास करने से एक रेखा में सूर्य और चन्द्रमा पड़े अतः एकार्गल दोष हुआ।

तथा दुष्टयोग गण्ड की संख्या १० में १ जोड़ कर आधा करने से शेष सहित (अर्थात् ५॥ साढ़े पाँच) हुआ अतः इसमें साढ़े तेरह १३॥ जोड़ने से १९ वाँ मूल शीर्ष नक्षत्र हुआ। इस प्रकार चक्र न्यास करने पर एक रेखा में सूर्य और चन्द्रमा पड़े तो एकार्गल दोष होता है। उसमें भी यदि एक प्रथम चरण में और अन्य चतुर्थ चरण में हो, अथवा एक द्वितीय में और अन्य तृतीय में हो तो विशेष दोष समझना ॥१५॥

स्पष्टार्थ चक्र—

पु.

आ	पु.	
मृ	श्ले	
रो	म	
कृ	पू.	
भ	उ.	
अ	ह	
सूर्य० रे	चि	चन्द्र.
उ	स्वा	
पू	वि.	
श	अनु	
ध	ज्ये	
श्र	मू	
अ	पू	

उ.

अथार्गलायामन्याचार्यमतं कथयति—

त्यक्त्वा गैतष्यस्य परे तु हेतुमुज्झन्ति नक्षत्रमशेषमेव ।
एकार्गलस्यैव हि सा च भङ्गी सन्ध्यागतं यद्गलहस्तयन्ति ॥१६॥

सं०—परे श्रीपत्याद्याचार्यास्तु गतैष्यस्य हेतुं त्यक्त्वा अशेषं (समस्तं) एव नक्षत्रं उज्झन्ति (त्यजन्ति) हि (यस्मात्) ते सन्ध्यागतं (सन्ध्यो-

दितं सूर्याच्चतुर्दशं) नक्षत्रं यद् (यद्वत्) समस्तमेव गलहस्तयन्ति (त्यजन्ति) सैव एकार्गलस्यापि भङ्गी रचनायुक्तिः । ।यद्वत् सन्ध्योदितं सूर्येण चरण-विद्धमपि समस्तमेव नक्षत्रं त्यजन्ति तद्वदेवैकार्गलगतमपि समस्तमेव त्यजन्तीत्यर्थः ॥१६॥

भा०—श्रीपति आदि अन्याचार्य गतगम्यके हेतु (पादवेध) को छोड़कर समस्त नक्षत्रको ही त्याज्य कहे हैं । क्योंकि वे सन्ध्योदित (अर्थात् सूर्यसे १४ वाँ) चन्द्रनक्षत्रको त्याज्य कहे हैं वही युक्ति एकार्गल विद्ध नक्षत्रके त्याज्यमें भी है ॥ १६ ॥

अथ कैश्चित् क्रूरात् षड्भान्तरितनक्षत्रं दूषितं, तत्तु चान्द्रजामित्रपरिणतमेवेत्याह—

क्रूरस्य भार्धान्तरमृक्षमेवमनिष्टमित्येष विशेषवादः ।
पापाच्चतुःपञ्चलवेषु चान्द्रं जामित्रमस्मात् खलु पर्यणंसीत् ॥१७॥

सं०—एवं क्रूरस्य पापग्रहस्य भार्धान्तरं (षड्भान्तरितं) ऋक्षं (नक्षत्रं) अनिष्टमित्येष केषाञ्चिदाचार्याणां विशेषवादःस्यात् । स तु अस्मात् पापात् चतुःपञ्चलवेषु (चतुःपञ्चाशन्नवमांशेषु) चान्द्रं (चन्द्र-सम्बन्धि) जामित्रमेव पर्यणंसीत् 'चन्द्रजामित्रेणैव परिणत इत्यर्थः ॥१७॥

भा०—पापग्रह से ६ राशि अन्तरपर जो नक्षत्र हो वह अनिष्ट है । इस प्रकार कितने आचार्यों की विशेषोक्ति है । परञ्च वह तो पापग्रह से ५४ वाँ नवांश पर स्थित चन्द्रमा के जामित्र ही होता है । अर्थात् ६ राशिपर पापग्रह पड़ता है तो चन्द्रजामित्र होता है, तथा ६ राशि में ५४ नवांश होते हैं इसलिये उक्त विशेषोक्ति चन्द्रजामित्र में ही आ गया ॥ १७ ॥

अथ कैश्चित् पादवेधे युक्तिरुक्ता तां दूषयति—

क्षतादृते दिग्धशरार्दितस्य शस्तं मृगस्यामिषमेवमन्ये ।
क्रूराङ्घ्रिवेधाय पदं वदन्ति तेनैव तेषां निजपक्षहानिः ॥१८॥
विश्लेषमायाति यथासुभिः स्वैरेणः शरेणैकदिशि क्षतोपि ।
तथाङ्घ्रिवेधादपि तारकाणां क्रूरस्य नश्येद्बलरूपसम्पत् ॥१९॥

सं०—यथा—दिग्धशरेण (विषाक्तबाणेन) अर्दितस्य मृगस्य आमिषं (मांसं) क्षतात् ऋते (क्षतं विनाऽन्यत) शस्तं, एवं अन्ये

आचार्याः क्रूराङ्घ्रिवेधाय पदं (दृष्टान्तं) वदन्ति, परञ्च तेनैव 'दृष्टान्तेन' तेषां निजपक्षहानिः स्यात्। तां हानिं दर्शयति—यथा शरेण एकदिश्यपि (एकस्मिन्नङ्गविभागेऽपि) क्षतः (विद्धः) एणः (मृगः) स्वैः असुभिः (सर्वप्राणैः) विश्लेषं (वियोगं) आयाति 'मृत्युं प्राप्नोतीत्यर्थः, तथैव क्रूरस्य (पापग्रहस्य) अङ्घ्रिवेधात् तारकाणां (नक्षत्राणां) अपि बलरूपसम्पत् नश्येत्। अतएव पापविद्धं शमस्तमेव नक्षत्रं त्यजेदिति भावः॥

भा०—जैसे विषयुक्त शर से मारे हुए हरिण के क्षत स्थल को छोड़ कर अन्य समस्त अङ्गों का मांस प्रशस्त माना जाता है इसी दृष्टान्त से दूसरे आचार्यों ने पापग्रह के पाद वेध मात्र को त्याज्य कहा समस्त नक्षत्र को नहीं। परञ्च उसी दृष्टान्त से उन आचार्यों के अपने पक्ष की ही हानि हुई—क्योंकि—जैसे किसी एक अङ्ग में भी शर से विद्ध होने पर हरिण समस्त शरीरस्थ प्राणों से विमुक्त हो जाता है, उसी प्रकार पापग्रह से चरण वेध होने पर भी समस्त नक्षत्रों का बलरूप सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये पापविद्ध समस्त नक्षत्र को ही त्याग देना चाहिये यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है। कहा भी है—"अशुभ विद्धमशेषमुडु त्यजेत्" ॥१८-१९॥

अथ चण्डायुधदोषमाह—

यदन्तगं हर्षणसाध्यशूलगण्डव्यतीपातकवैधृतीनाम्।
तत्रैव चन्द्रोडुनि चण्डमैशमस्त्रं पतेन्मङ्गलभङ्गलक्ष्म ॥२०॥

सं०—हर्षण-साध्य-शूल-गण्ड-व्यतीपातक-वैधृतीनां अन्तगं यन्नक्षत्रं तत्रैव (तस्मिन्नेव) नक्षत्रे ऐशं (ईशसम्बन्धि) चण्डमस्त्रं पतेत्, तत् मङ्गलभङ्गलक्ष्म (मङ्गलस्य शुभस्य भङ्गकारकं) ज्ञेयम्॥२०॥

भा०—हर्षण, साध्य, शूल, गण्ड, व्यतीपात और वैधृति इन ६ योगों के अन्त में जो नक्षत्र रहता है उस नक्षत्र पर शङ्कर का चण्ड आयुध पतित होता है, वह मङ्गल कार्य का भङ्गकारक होता है ॥२०॥

अथ दुष्टयोगानां वर्ज्यघाटकाः, ग्रहणदुष्टसमयं चाह—

गं-शू-वि-व-व्याऽतिषु षट्शरत्रित्रिनन्दषट्का घटिकाः क्रमेण।
द्व्यंशं त्यजेत्पारिघमिन्दुभान्वोः पर्वण्यतीते दिनसप्तकं च ॥२१॥

सं०—गं-शू-वि-व-व्याऽतिषु (गण्ड-शूल-विष्कम्भ-वज्र-व्याघाताऽतिगण्डेषु) क्रमेण षट्-शर-त्रि-त्रि-नन्द-षट्का घटिकाः त्यजेत्। पारिघं

(परिघस्येदं पारिघं) द्व्यंशं (अर्धं) त्यजेत् । तथा—इन्दुभान्वोः पर्वणि (ग्रहणे) अतीते (गते) सति दिनसप्तकं च त्यजेत् ॥२१॥

भा०—गण्ड में ६, शूल में ५, विष्कम्भ में ३, वज्र में ३, व्याघात में ९, और अतिगण्ड में ६ घटी आरम्भ से त्याज्य है। तथा परिघयोग का पूर्वार्ध त्याज्य है। एवं सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण के बाद ७ दिन सब शुभ कार्यों में त्याज्य है ॥ २१ ॥

अथ ग्रहभेदादिगतनक्षत्रदोषं कथयति—

यस्मिन्नृक्षे वीक्ष्यते सैंहिकेयो भेदस्ताराखेटयोर्यत्र वा स्यात् ।
आषण्मासन्तत्र लग्नेन्दुभाजि भ्राजिष्णु स्यान्नो शुभंकर्म किञ्चित् ॥

सं०—यस्मिन् ऋक्षे सैंहिकेयो राहुः वीक्ष्यते दृश्यते (ग्रहणं भवतीत्यर्थः) यत्र वा ताराखेटयोः (मङ्गलादिकयोर्द्वयोर्ग्रहयोः) भेदः (योगः) तत्र नक्षत्रे लग्नेन्दुभाजि (लग्नस्थे, चन्द्राक्रान्ते वा) आषण्मासं षण्मासपर्यन्तं किञ्चित् शुभं कर्म भ्राजिष्णु (शोभनं) न स्यात् ॥२२॥

भा०—जिस नक्षत्र में राहु देख पड़े (अर्थात् ग्रहण हो) और जिस नक्षत्र में मंगलादि ५ ग्रहों में किसी दो का भेद योग हो उस नक्षत्र में स्थित चन्द्रमा, और लग्न को ६ मास पर्यन्त त्याग देना चाहिये क्योंकि उस नक्षत्र में शुभकर्म अच्छा नहीं होता है ॥ २२ ॥

पापमुक्तनक्षत्रस्य शुद्धिं पातदोषं चाह—

उत्पातपापग्रहमुक्तमृक्षं यदीन्दुराक्रम्य पुनर्भुनक्ति ।
तदा तदर्हं सकलेषु कर्मसु त्यजेत्समक्रान्तितनू रवीन्द्वोः ॥२३॥

सं०—उत्पातपापग्रहमुक्तं (त्रिविधोत्पातेन, पापग्रहेण त्यक्तं) ऋक्षं (नक्षत्रं) यदि इन्दुश्चन्द्र आक्रम्य पुनः (द्वितीयवारं) भुनक्ति तदा तत् नक्षत्रं सकलेषु कर्मसु अर्हं योग्यं भवति । तथा रवीन्द्वोः समक्रान्तितनू तुल्यक्रान्ती सकलेषु कर्मसु त्यजेत् ॥ २३ ॥

भा०—जिस नक्षत्र में उत्पात हुआ हो उसको और पापग्रह से त्यक्त नक्षत्र को यदि चन्द्रमा दोबारा भोग करै तो वह नक्षत्र ६ मास के भीतर भी सब शुभकार्य में शुभ होता है। तथा सूर्य और चन्द्रमा की तुल्य क्रान्ति को भी शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये ॥ २३ ॥

क्रान्तिसाम्यसम्भवमाह—

त्रिभागशेषे ध्रुवनाम्नि चैन्द्रे त्र्यंशे गते सम्प्रति सम्भवोऽस्य ।
मानार्धयोगाधिकमिन्दुभान्वोः क्रान्त्यन्तरं चेन्न तदैष दोषः ॥२४॥

सं०—ध्रुवनाम्नि योगे त्रिभागशेषे सति, ऐन्द्रे योगे च त्र्यंशे गते सति सम्प्रत्यास्मिन् समये अस्य (क्रन्तिसाम्यस्य) सम्भवः स्यात् । इन्दुभान्वोः क्रान्त्यन्तरं मानार्धयोगाधिकं चेत् तदा एष दोषो न स्यात् । चन्द्रार्कयोर्विम्बयोगार्धादल्पे क्रान्त्यन्तरे सति दोष इत्यर्थः ॥२४॥

भा०—ध्रुव योग के तृतीयांश अवशेष रहने पर और ऐन्द्रयोग के तृतीयांश बीतने पर क्रान्तिसाम्य का सम्भव होता है । अर्थात् वहाँ क्रान्ति बनाकर देखना यदि रवि चन्द्रमा के विम्बयोगार्ध से क्रान्ति का अन्तर अधिक हो तो दोष नहीं होता है । अर्थात् विम्बयोगार्ध से अल्प अन्तर हो तो दोष समझना चाहिये ॥२४॥

वि०—ग्रन्थारम्भ समय में १२ के लगभग अयनांश (क्रान्तिपात) था अतः ध्रुवयोग में क्रान्तिसाम्य व्यतीपात नामक, तथा ऐन्द्रयोग में क्रान्तिसाम्य वैधृत नामक होता है । इष्ट समय में अयनांश संस्कार से जो योग आवे उसमें क्रान्तिसाम्य का सम्भव देखना चाहिये । यथा—केशवोक्त संस्कार—

"त्रिघ्नाऽयनांशा नखभाजितास्तद्धीनाश्च सार्धत्रिभुवोऽद्रिपक्षाः ।
तत्तुल्ययुत्योर्गतयोर्विलोक्यौ पातौ व्यतीपातक-वैधृताख्यौ ॥"

अर्थ—अयनांश को ३ से गुना कर २० के भाग देने से जो लब्धि हो उसको साढ़े तेरह (१३॥) में घटाने से जो संख्या हो उतने विष्कम्भादि योग में व्यतीपात नामक, तथा उसी लब्धि को २७ में घटाने से जो संख्या हो विष्कम्भादि उस योग में वैधृतनामक क्रान्तिसाम्य दोष होता है ।

उदा०—अयनांश २१ । ३० । ३२ को ३ से गुना कर ६४ । ३१ । ३६ इसमें २० का भाग देने से ३ । १३ इसको साढ़े तेरह (१३ । ३०) में घटाने से (१० । १७) ग्यारहवाँ (वृद्धि) योग की १७ घटी बीतने पर क्रान्तिसाम्य का सम्भव हो सकता है । तथा २७ में उसी लब्धि ३।१३ को घटाने से २३।४७ बचे, अर्थात् चौवीसवाँ शुक्लयोग की ४७ घटी पर क्रान्तिसाम्य का सम्भव होगा ॥

अथ नक्षत्रशुद्धिप्रशंसामाह—

स्फुरददूषणभूषणकान्तयो यदि भवन्ति मृगाङ्कमृगीदृशः ।
करमवाप्य वरः सुतनोस्तदा शुभरसं भरसम्भृतमश्नुते ॥२५॥

सं०—यदि मृगाङ्कमृगीदृशः (मृगाङ्कस्य चन्द्रस्य मृगीदृशः = स्त्रियस्ताराः = नक्षत्राणीत्यर्थः) स्फुरद्दूषणभूषणकान्तयः (अस्तादिदोषरहिताः) भवन्ति तदा सुतनोः (कुमार्याः) करं अवाप्य पाणिग्रहं कृत्वा वरः भरसंभृतं (अतिशयं) शुभरसं (सुखभोगं) अश्नुते लभते इत्यर्थः ॥

भा०—जो नक्षत्र वेधादि दोष रहित देदीप्यमान कान्तियुत हों उनमें वधू के पाणिग्रहण करने से वर अतिशय सुख का भोग करता है ॥ २५ ॥

अथ कालमीमांसाध्यायः ।

जन्मराश्योरेव मेलके युक्तिं कथयति—

जन्मलग्नमिदमङ्गमङ्गिनां मेनिरे मन इतीन्दुमन्दिरम् ।
सौहृदं हि मनसोर्न देहयोर्मेलकस्तदयमिन्दुगेहयोः ॥ १ ॥

सं०—देहिनां 'यत्' जन्मलग्नं इदं अङ्गं (शरीरं) तथा इन्दुमन्दिरं (चन्द्रराशिः) इति मनः मेनिरे । हि (यतः) सौहृदं (मित्रत्वं) मनसोरेव भवति, देहयोस्तु सौहृदं न भवति, तत् (तस्मात्) इन्दुगेहयोः (वधूवरचन्द्रराश्योः) अयं मेलकः स्यात् । न तु जन्मलग्नयोरित्यर्थः ॥१॥

भा०—प्राणियों का जन्मलग्न शरीर, और चन्द्रराशि मन कहा गया है । मैत्री मन में ही होती है, शरीर में नहीं इसलिये वर कन्या की मनस्वरूप चन्द्रराशियों का ही मेलापक विचार उचित है ॥ १ ॥

यदि चन्द्रराश्योर्मेलकस्तर्हि सूक्ष्मयोस्तन्नवांशयोरपि कथं नेति दृष्टान्तेन कथयति—

चन्द्रराशिवशमेव सौहृदं सूक्ष्मयोरपि न किं नवांशयोः ।
एवमस्तु मकरांशगे रवौ कर्कटेऽपि किमु नोत्तरायणम् ॥ २ ॥

सं०—चन्द्रराशिवशं (वधूवरयोर्जन्मराश्यनुसारं) एव सौहृदं 'कथितं' तर्हि सूक्ष्मयोः तन्नवांशयोरपि कथं नेति, एवमस्तु (एवं प्रश्नश्चेत् तदा) मकरांशगे (मकरनवांशस्थे) रवौ (सूर्ये) कर्कटेऽपि उत्तरायणं किमु न भवति ? । अयनादिकं यतो राशिवशादेव भवति तस्माद्राश्योरेव मेलकोऽपि समुचित इत्यर्थः ॥ २ ॥

भा०—"यदि जन्मकालिक चन्द्रराशि (जन्मराशि) से ही मेलापक विचारा जाता है तो उससे भी सूक्ष्म चन्द्रनवांश से क्यों नहीं किया जाय ?" यदि ऐसा प्रश्न हो तो—जब कर्क राशि में मकर के नवांश (सप्तम नवांश) में सूर्य रहता है तब उत्तरायण क्यों नहीं होता है ? । अर्थात् जैसे अयन और गोल राशि से ही होता उसी प्रकार मेलक विचार भी राशि ही से उचित है ॥ २ ॥

अयनादिकं राशिवशादेवेति सप्रमाणमाह—

मासषट्कमयनं च दक्षिणादित्य एति तदिति श्रुतिर्जगौ ।
मूलसंक्रमसमां विवस्वतः स्वस्वभङ्गिमृतवोऽपि बिभ्रति ॥ ३ ॥

सं०—आदित्यः (सूर्यः) मासषट्कं दक्षिणा* (दक्षिणस्यां दिशि) एति (गच्छति) तत् दक्षिणा 'अयनं' इति श्रुतिः (वेदः) जगौ कथयतीत्यर्थः । तथा—ऋतवः (वसन्तादयः) अपि विवस्वतः (सूर्यस्य) मूलसंक्रमसमां स्वस्वभङ्गिं (स्वस्वाकृतिं) विभ्रति (धारयन्ति) अतो मूलराशिवशादेव घटितविचारः समुचित इत्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य ६ मास (कर्क से धनु पर्यन्त) दक्षिण दिशा को चलते हैं उसीको दक्षिणायन वेद ने भी कहा है । दूसरा प्रमाण यह है कि वसन्तादि ऋतु भी सूर्य की राशि संक्रान्ति से ही अपनी अपनी भङ्गी (चिह्न) को धारण करती है । नवांश से नहीं । अर्थात् सूर्य जब मीन में जाता है तभी वसन्त का चिह्न (वृक्षादिकों में नव पल्लादि होना), दृश्य होता है, मीन के नवांश में जाने से नहीं अतः राशिवश ही मेलकविधि समुचित है ॥ ३ ॥

पुनरन्यां युक्तिं कथयति—

किं दिनर्क्षविरहे करग्रहो नेष्यते तदुदयक्षणेष्वपि ।
स्थूलमेवमखिलं जगत्फलं तद्विशेषयति सूक्ष्मतागतिः ॥ ४ ॥

सं०—दिनर्क्षविरहे (विवाहविहितदिवसनक्षत्रालाभे) तदुदयक्षणेषु (तन्नक्षत्रमुहूर्तेषु) अपि करग्रहः (विवाहः) किं नेष्यते ? एवं अखिलं जगत्फलं स्थूलं, तत् (स्थूलं फलं) सूक्ष्मतागतिः विशेषयति, स्थूले सूक्ष्मतालाभश्चेत् तदा स्थूलफले विशेषतां प्रतिपादयतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

भा०—विवाहविहित दिननक्षत्र नहीं प्राप्त होने पर विहित नक्षत्र के मुहूर्त

---

* "दक्षिणा" इत्यव्ययम् ।

में क्या विवाह नहीं कहा है ? अवश्य कहा है । "धिष्ण्ये प्रोक्तं तस्य भस्योदये वा" इत्यादि । परञ्च संसार का समस्त फल स्थूल है, उस स्थूल फल को सूक्ष्मता विशेष करती है । अर्थात् स्थूल में सूक्ष्म का लाभ हो तो विशेष फल होता है ॥

यदि सूक्ष्मता स्थूलं विशेषयति तदा सूक्ष्मतैव किं
न ग्राह्या इत्यत्र हेतुं प्रतिपादयति—

अव्यवस्थितिरिति प्रतिवेलं तत्तदूहनविकल्पसमूहैः ।
स्थूलमप्यनुसरन्ति कृतीन्द्राः केवलं न रमणीयमणीयः ॥ ५ ॥

सं०—इति (एवं सूक्ष्मताग्रहणे) प्रतिवेलं (प्रतिक्षणं) तत्तदूहनविकल्पसमूहैः (तत्तद्वेलाया ऊहनविकल्पास्तर्कवितर्ककल्पनास्तत्-समूहैः) अव्यवस्थितिः स्यात् । अतः कृतीन्द्राः गर्गादयः स्थूलमप्यनुसरन्ति । केवलं अणीयः (सूक्ष्मतरमेव) न रमणीयं भवति ॥ ५ ॥

भा०—सूक्ष्मता के लिये प्रत्येक क्षण में तर्क वितर्क से तत्तत् समय के अनेक कल्पनाओं से अव्यवस्थिति हो जायगी । इसलिये गार्गादि महर्षियों ने स्थूल का भी अनुसरण किया केवल सूक्ष्म अच्छा नहीं है ॥ ५ ॥

अथ सूक्ष्मफलस्य विशेषतां प्रतिपाद्य तद्ग्राह्यतां कथयति —

भिन्नभिन्नफलभाग्भुवि भूयानेकधिष्ण्यदिनजोऽपि जनोऽयम् ।
सूक्ष्मताऽपि ननु तेन गरिष्ठा सा च मूलमनुरुध्य विधेया ॥ ६ ॥

सं०—भूवि भूयान् (बहुतरः) अयं विद्यमानो जनः एकधिष्ण्य-दिनजोऽपि (एकनक्षत्रतिथ्युत्पन्नोऽपि) भिन्नभिन्नफलभाग् 'दृश्यते' तेन सूक्ष्मतापि गरिष्ठा (गरीयसी) किञ्च सा सूक्ष्मता मूलं (स्थूल-फलं) अनुरुध्य 'एव' विधेया विचार्या ॥ ६ ॥

भा०—संसार में ऐसे बहुत लोग हैं जो एक नक्षत्र; एक तिथि में उत्पन्न हुए भी भिन्न भिन्न फल के भागी हैं । इस लिये सूक्ष्मता भी विशेष है । परञ्च वह सूक्ष्मता मूल (अर्थात् स्थूल) के अनुरोध से ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ केवलसूक्ष्मताग्रहणेऽनवस्थां दर्शयति—

सूक्ष्मो नवांशाद् द्विरसांश एवं त्रिशांललवस्तल्लवतोऽपि सूक्ष्मः ।
ततोऽपि लिप्तेत्यवलिप्तवाचां दृगेतु कस्यां नियतौ समस्याम् ॥७॥

सं०—'राशितो नवांशः सूक्ष्म उक्तः'। नवांशादपि द्विरशांशः (द्वादशांशः) सूक्ष्मः, एवं तल्लवतः (द्वादशांशतः) अपि त्रिंशल्लवः सूक्ष्मः, ततोऽपि (त्रिंशल्लवादपि) लिप्ता (षष्ट्यंशः) इत्येवं अवलिप्तवाचां जनानां दृक् (दृष्टिः) कस्यां नियतौ समस्यां (समाधानं) एतु गच्छतु न कस्यामपीत्यर्थः, सूक्ष्मताया अवसानाभावात् ॥ ७ ॥

भा०—राशि से नवांश सूक्ष्म कहा गया है। सूक्ष्मता के विचार में नवांश से भी द्वादशांश सूक्ष्म, द्वादशांश से भी त्रिंशांश, त्रिशांश से षष्ठ्यंश, इत्यादि विषष्ट्यंश, आदि सूक्ष्म विभाग मानने वालों की दृष्टि किस अवधि पर पहुँच सकती है? किसी पर भी नहीं, क्योंकि सूक्ष्मता का अवसान ही नहीं हैं। अतः स्थूल का अवलम्बन अवश्य करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ सूक्ष्मताया दुर्गमत्वं कथयति—

अत्यन्तसूक्ष्मः स किलैकदेशो येनाखिलानां भिदुरा फलर्द्धिः।
नास्मादृशां दृग्विषयः स तस्मान्मूलानुकूला व्यवहारसिद्धिः ॥८॥

सं०—स एकदेशः(कालविभागः) अत्यन्तसूक्ष्मः स्यात्, येन अखिलानां जनानां फलर्द्धिः (फलसम्पत्तिः) भिदुरा (भिन्ना भिन्ना) भवति। स (अत्यन्तसूक्ष्मप्रदेशः) अस्मादृशां जनानां दृग्विषयो दर्शनयोग्यो न स्यात्। तस्मात् 'लोकानां' व्यवहारसिद्धिः मूलानुकूला एवेति।

भा०—काल का वह प्रदेश अत्यन्त सूक्ष्म है जिससे सब जन्तुओं के फल भिन्न भिन्न देखने में आता है, उस सूक्ष्म प्रदेश को हम लोग इस चर्मचक्षु से नहीं देख सकते हैं, इसलिये मूल (स्थूल नक्षत्रादि) के अनुकूल ही व्यवहार की सिद्धि है ॥ ८ ॥

अथ सिद्धान्तमाह—

इति सति यदि मूले सूक्ष्मभावांशलब्धि-
स्तदखिलमपि सिद्धं नास्ति चेन्मूलसम्पत्।
तदुभयलवनाशो दुर्गमत्वादणूनां
परिणतिरिति रूढा कालमीमांसया नः ॥ ९ ॥

सं०—इत्येवं सति मूले (अनुकूले स्थूलराश्यादौ,) यदि सूक्ष्मभावांशलब्धिः, तत् (तदा) अखिलमपि सिद्धं स्यात्। चेत् मूलसम्पत्

नास्ति तदा अणूनां सूक्ष्मभागानां दुर्गमत्वात् तदुभयलवनाशः स्यात् । इति कालमीमांसया (समयविवेकेन) नः (अस्माकं) परिणतिः रूढा । अतो राश्योरनुकूलत्वे एव नवांशानुकूलत्वं विचार्यमिति सिद्धम् ॥ ९ ॥

भा०—इस प्रकार मूल के अनुकूल रहने पर यदि सूक्ष्म भाग भी लब्ध हो जाय तो सर्वथा सिद्ध है । और यदि मूल (स्थूल = राशि, नक्षत्र) ही नहीं अनुकूल हो तब तो सूक्ष्म भाग के दुर्गम होने के कारण 'सूक्ष्म का भी लाभ न होगा' तब दोनों ही नष्ट हो जायँगे । काल की मीमांसा (विचार) से यही परिणाम हुआ । अतः व्यवहार में स्थूल का ग्रहण करना ही सिद्ध हुआ ॥ ९ ॥

अथ मेलकाध्यायः ।

तत्रादौ सयुक्तिकं राशिमेलकमाह—

व्यये न वित्तं न तपस्यपत्यं नायुर्द्विषत्येव वधूवराणाम् ।
द्विर्द्वादशः पञ्चनवाष्टषष्ठो जन्मर्क्षयोः सख्यविधिर्न दृष्टः ॥ १ ॥

सं०—'प्राचीनैः' जन्मर्क्षयोः (जन्मराश्योः) द्विर्द्वादशः, पञ्च-नवाष्टषष्ठः (पञ्चमनवमः, अष्टषष्ठश्च) सख्यविधिः (सौहृदविधिः) न दृष्टः । तत्र हेतुं कथयति—यतः—व्यये (अर्थस्यापगमे) वित्तं (धनं) न भवति अतः व्यये (द्वादशे) वित्तं (द्वितीयं भं) न योज्यम् । तथा तपसि (ब्रह्मचर्यादिनियमे) अपत्यं (सन्ततिः) न भवति, अतः तपसि (नवमराशौ) अपत्यं (पञ्चमं भं) न योज्यं, तथा च—द्विषति (शत्रौ सति) आयुः (जीवनं) न, इत्यतः द्विषति (षष्ठे) आयुः (अष्टमं भं) न योजनीयमिति वरकन्ययोः सेव्यसेवकयोर्वा जन्मर्क्षयोः द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं, नवपञ्चमेऽनपत्यता, षट्काष्टके मरणमिति फलं स्फुटमुपपद्यते ॥ १ ॥

भा०—वर कन्या, वा सेव्य सेवककी जन्मराशियोंमें परस्पर द्वितीयद्वादश, पञ्चमनवम, षष्ठअष्टम में मैत्रीविधान (मेल) नहीं कहा गया है । उसकी युक्ति श्लोकके पूर्वार्धसे कहते हैं कि—व्ययमें (खर्च होनेपर) धन नहीं रहता है, और तपस्या में (तपश्चर्याके नियममें रहनेपर) अपत्य(सन्तान) नहीं हो सकता तथा शत्रुओंके बीच आयु (जीवन) नहीं रहता है । इसलिये व्यय (द्वादश) के साथ धन (द्वितीय राशि) का और तप (नवम)के साथ अपत्य (पञ्चमराशि) का, एवं द्विषत् (षष्ठ) के साथ आयु (अष्टमराशि)का मेल शुभ नहीं है ॥ १ ॥

अथास्य परिहारं ताराविचारं च कथयति—

दृश्यते सुहृदभिन्नपतित्वं क्षेत्रयोस्तदखिलेष्वपि मेलः॥
भीरुभादचल-पञ्च-तृतीया शोक-वैर-विपदे वरतारा॥२॥

सं०—चेत् क्षेत्रयोः (राश्योः) सुहृदभिन्नपतित्वं (स्वामिसुहृत्त्वं एकाधिपत्यं वा) दृश्यते तत्तदा अखिलेषु (समस्तेषु द्विर्द्वादशादिषु) अपि मेलः स्यात्। अथ ताराविचारं कथयति—भीरुभात् (कन्यानक्षत्रात्) वरतारा (वरनक्षत्रं) अचल-पञ्च-तृतीया क्रमेण शोक-वैर-विपदे ज्ञेया॥२॥

भा०—यदि राशियों के स्वामी में मैत्री हो, वा एक ही हो तो सब (द्विर्द्वादश आदि) में भी मेल होता है। अब तारा विचार कहते हैं—कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिन कर ९ के भाग देने से—७-५-३ तारा क्रम से शोक, शत्रुता और विपत्ति देने वाली होती है। अर्थात् शेष तारा शुभ है॥ २॥

अथैकराशौ, एकनक्षत्रे च विशेषं कथयति—

नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराश्यो-रभिन्नराश्योर्यदि भिन्नमृक्षम्।
प्रीतिस्तदानीं निविडा नृनार्योश्चेत्कृत्तिकारोहिणिवन्न नाडी॥३॥

सं—यदि नृनार्योः (वरकन्ययोः) भिन्नराश्योः एकं नक्षत्रं, तथा यदि अभिन्नराश्योः (एकराश्योः) भिन्नं ऋक्षं (नक्षत्रं) तदा निविडा प्रीतिः (अतिशयं प्रेम) भवति। एकराशौ चेत् कृत्तिकारोहिणिवत् 'भिन्नमृक्षं' तदा नाडी न स्यात् (नाडीदोषो न भवतीत्यर्थः) यथाह भृगुः—"दम्पत्योरेकराशिश्चेत् पृथगृक्षं यदा भवेत्।"

वशिष्ठोक्तो विवाहः स्याद् गणं नाडीं न चिन्तयेत्॥३॥

भा०—वर कन्या के भिन्न राशि और एक नक्षत्र हो, वा एक राशि और भिन्न नक्षत्र हो तो दोनों में अत्यन्त प्रेम होता है। तथा—कृत्तिका और रोहिणि के समान भिन्न नक्षत्र एक राशि में एकनाडीजन्य दोष भी नहीं होता है॥ ३॥

अथ मतान्तरं कथयति—

पराशरः प्राह नवांशभेदादेकर्क्षराश्योरपि सौमनस्यम्।
एकांशकत्वेपि वसिष्ठशिष्यो नैकत्र पिण्डे किल नाडिवेधः॥४॥

सं—एकर्क्षराश्योरपि नवांशभेदात् (चरणभेदात्) सौमनस्यं (प्रीतिं) पराशरः प्राह। वशिष्ठशिष्यस्तु एकांशकत्वेऽपि चरणैकत्वेऽपि सौमनस्यं प्राह, यतः—एकत्र पिण्डे (एकस्मिन् नक्षत्रविम्बे) नाडिवेधो न भवति॥

भा०—एक नक्षत्र एक राशि होने पर चरण भेद से परस्पर प्रीति होती है, ऐसा पराशर मुनि ने कहा है। वशिष्ठ के शिष्य ने एक नक्षत्र के एक चरण में भी सौमनस्य (प्रीति) कहा है, क्योंकि उनके मत से एक पिण्ड (शरीर) में नाडीवेध नहीं होता है। इसका दृष्टान्त अग्रिम श्लोक में देते हैं ॥ ४ ॥

चरणैकत्वे दोषाभावे दृष्टान्तमाह—

नाग्निर्दहत्यात्मतनुं तथा हि द्रष्टा स्वदृष्टेर्न हि दर्शनीयः।
एकांशकत्वेपि समप्रभावान्न भर्तृभार्याव्यवहारसिद्धिः ॥ ५ ॥

सं०—यथा हि अग्निः आत्मतनुं (स्वशरीरं तेजोरूपं) न दहति, यथा च द्रष्टा स्वदृष्टेः दर्शनीयः (दर्शनयोग्यः) न भवति, तथा हि एकत्र पिण्डे नाडिवेधोऽपि न भवितुमर्हतीति वशिष्ठशिष्यः प्राह। तत्र दोषं कथयति—एवं एकांशकत्वे चरणैकत्वे समप्रभावात् (तुल्याकारबलात्) भर्तृभार्याव्यवहारसिद्धिरपि न स्यात्। यत उक्तं जातकेषु—"लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यात्" इत्यादि। अतश्चरणैकत्वे सौमनस्यं न भवितुमर्हतीत्याचार्यस्याभिप्रायः ॥ ५ ॥

भा०—जैसे आग अपने शरीर को नहीं जलाती है, और देखने वाला जैसे अपनी दृष्टि का दृश्य नहीं होता है, इसी प्रकार एक चरण होने पर एक नक्षत्र में नाडीवेध का दोष नहीं हो सकता है, यह वशिष्ठ के शिष्य का दृष्टान्त है। इसमें आचार्य दोष देते हैं कि—एक चरण में तुल्य प्रभाव होने के कारण भर्ता और भार्या का व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता है। अर्थात् स्त्री को पति के अधीन होना चाहिये—एक नवांश में तुल्य सामर्थ्य होने से स्त्री अपने स्वामी के वश में नहीं रह सकती है, अतः परस्पर प्रीति नहीं होने के कारण एक नक्षत्र के एक चरण त्याज्य है ॥ ५ ॥

अथ त्रिनाडीवेधमाह—

रुद्रार्यमेन्द्रवरुणद्वयमश्विनी च विश्वाग्निवायुफणिनां युगमन्त्यभञ्च।
शेषाणि चेति नवकत्रयमेकयाते जन्मोडुनी वरवधूनिधनाय नाडी ॥

सं०—रुद्रार्यमेन्द्रवरुण-द्वयं, अश्विनी चेति 'प्रथमनवकम्'। विश्वाग्निवायुफणिनां युग्मं अन्त्यभं चेति 'द्वितीयनवकम्'। शेषाणि नक्षत्राणि च 'तृतीयनवकम्' इत्येवं 'नक्षत्राणां' नवकत्रयं ज्ञेयम्। जन्मोडुनी

(कन्यावरयोर्जन्मनक्षत्रे) एकयाते एकस्मिन् नवके प्राप्ते चेत् 'तदा' वरवधूनिधनाय नाडी (नाडीदोषो) भवति ॥ ६ ॥

भा०—आर्द्रा पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी हस्त, ज्येष्ठामूल, शतभिषा पूर्वभाद्रपदा और अश्विनी यह एकनवक, तथा उत्तराषाढ़ श्रवण, कृत्तिका रोहिणी, स्वाती विशाखा, आश्लेषा मघा और रेवती ये द्वितीयनवक, तथा शेषनक्षत्र (भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढ़, धनिष्ठा और उत्तरभाद्रपद यह तृतीयनवक इस प्रकार २७ नक्षत्रों में तीन नवक हैं, किसी एक नवक में वर कन्या दोनों के जन्मनक्षत्र पड़ें तो मरणप्रद नाडीदोष होता है ॥ ६ ॥

केश्चित् त्रिचरणद्विचरणनक्षत्रोत्पन्नकन्यायाः क्रमेण चतुर्नाडी-
पञ्चनाडीचक्रवेध उक्तः स न ग्राह्य इत्याह—

प्रमीयमाणोऽपि मतैर्मुनीनां त्रिद्व्यङ्घ्रिनक्षत्रभुवः कुमार्याः ।
नाडीचतुःपञ्चतयस्य पक्षो न क्षोदवीथीविषयत्वमेति ॥ ७ ।

सं० त्रिद्व्यङ्घ्रिनक्षत्रभुवः (त्रिचरण-द्विचरणनक्षत्रोत्पन्नायाः) कुमार्याः कन्यायाः 'क्रमेण' नाडीचतुःपञ्चतयस्य (नाडीचतुष्टयस्य, नाडीपञ्चकस्य) पक्षः मुनीनां (हारीतादिमहर्षीणां) मतैः प्रमीयमाणोऽपि, (प्रमाणत्वं प्राप्तोऽपि) क्षोदवीथीविषयत्वं (विचारपद्धतिगोचरत्वं) नैति (नागच्छति) । सर्वदेशेऽनुपयुक्तत्वात् । यथा ह वृद्धगर्गः—"जाङ्गले च चतुर्माला पाञ्चाले पञ्चमालिका । त्रिमाला सर्वदेशेषु विवाहे ऋषिसम्मता ॥"
तथा च हारीतः—

"त्र्यंघ्रिभे द्व्यंघ्रिभे वध्वा जातायाः गणयेत् क्रमात् ।
वह्निभादिन्दुमान्नाडीं चतुःपञ्चसु पर्वसु ॥" इति ॥ ७ ॥

भा०—'त्रिचरणनक्षत्रोत्पन्न कन्या का चतुर्नाडी चक्र में, और द्विचरण-नक्षत्रोत्पन्न का पञ्चनाडी चक्र में वेध देखना चाहिये"—इस प्रकार कितने आचार्यों का पक्ष मुनियों के मतों से प्रमाणित होने पर भी हमारे विचारपथ में नहीं आता है ॥ ७ ॥

अथ योनिमैत्रीं कथयति—

अश्वेभाजोरगाहिश्वखनकरिपवो मेष ओतुर्द्विराखु-
र्गोकाल्यौ व्याघ्रकालीपशुरिपुहरिणैणाश्वकीशाः क्रमेण ।

द्वौ बभ्रू कीशसिंहौ तुरगमृगपतिच्छागमातङ्गमेवं
नेष्टा योनिः सवैरा वरयुवतिनृपामात्ययोरश्विनीतः ॥ ८ ॥

सं० अश्व, इभो हस्ती, अजो मेषः, उरगः सर्पः, अहिः सर्पः, श्वा कुक्कुरः, खनकरिपुर्मार्जारः, मेषः, ओतुर्मार्जारः, द्विर्द्विवारं आखुर्मूषकः, गौः, काली महिषी, व्याघ्रः, काली, पशुरिपुर्व्याघ्रः, हरिणः, एणो हरिणः, श्वा, कीशो वानरः, द्वौ बभ्रू नकुलौ, कीशः, सिंहः, तुरगो घोटकः, मृगपतिः सिंहः, छागः, मातङ्गो हस्तीत्येवं क्रमेणाश्विनीतः 'अश्विनीमारभ्य' अष्टाविंशतिनक्षत्राणां योनिः 'कथिता' 'तत्र' वरयुवति –नृपामात्ययोः सवैरा योनिः नेष्टा भवति। वैरं तु 'अश्वमहिषे, गजसिंहे, सर्पनकुले' इत्यादौ परस्परं लोकव्यवहारतो ज्ञेयम् ॥ ८ ॥

भा०—अश्व १, गज २, छाग ३, सर्प ४, सर्प ५, श्वान ६, मार्जार ७, छाग ८, मार्जार ९, मूस १०, मूस ११, गौ १२ भैंस १३, बाघ १४, भैंस १५, बाघ १६, हरिण १६, हरिण १८, श्वान १९, वानर २०, नकुल २१, नकुल २२, वानर २३, सिंह २४, अश्व २५, सिंह २६, छाग २७ और गज २८ ये अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों के क्रम से योनि हैं। इनमें परस्पर शत्रुता वाली योनि वर कन्या और राजा मन्त्री की हो तो अशुभ समझना ॥ ८ ॥

वि०—शत्रुता जैसे—अश्व महिष में, सिंह गज में, सर्प नकुल में, गो व्याघ्र में, मूस मार्जार में, श्वान हरिण में और वानर छाग में स्वाभाविक शत्रुता है ॥

अथ गणमैत्रीं कथयति—

त्रियुग्मी रोहिण्या सह शिवयमर्क्षे नरि सुरे
श्रुतिस्वातीमित्रादितिगुरुकरान्त्याश्विशशिभम् ।
परं दैत्ये मृत्युर्दनुजमनुजानामनिमिषैः
सह स्वैरं वैरं निर्ऋतितनयानां परिणये ॥ ९ ॥

सं०—रोहिण्या सह त्रियुग्मी (त्रयाणां 'फाल्गुन्याषाढाभाद्रपदानां' युग्मानां समाहारस्त्रियुग्मी पूर्वफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनी पूर्वाषाढोत्तराषाढा-पूर्वभाद्रपदोत्तराभाद्रपदेत्यर्थः) शिवयमर्क्षे (आर्द्राभरण्यौ) इति नक्षत्र-नवकं नरि (नरगणे), श्रुतिस्वातीमित्रादितिगुरुकरान्त्याश्विशशिभं, इति नक्षत्रनवकं सुरे (देवगणे) तथा परं (अवशिष्टनक्षत्रनवकं) दैत्ये

(दैत्यगणे) ज्ञेयम्। परिणये विवाहे दनुजमनुजानां दैत्यनराणां मृत्युः। निऋतितनयानां (राक्षसानां) अनिमिषैः (देवैः) सह स्वैरं (स्वाभाविकं) वैरं स्यात्। अर्थात् देवमनुजयोः, स्वस्वगणेच मित्रत्वं स्यात् ॥९॥

भा०—रोहिणी, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभा०, उ०भा०, आर्द्रा, भरणी ये ९ नक्षत्र मनुष्यगण, श्रवण, स्वाती, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा ये ९ नक्षत्र देवगण, और शेष—कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, शतभिषा ये ९ नक्षत्र दैत्यगण हैं। दैत्यमनुष्यगणों में मरण, देव और दैत्य के साथ विवाह में स्वाभाविक शत्रुता होती है। अर्थात् अपने अपने गण में और देव मनुष्य में मैत्री होती है ॥ ९ ॥

अथ राशिवैरं वश्यावश्यं चाह—

चापाजौ वृषभेण कुम्भमिथुनौ कर्केण मेषः स्त्रिया
शैलाग्नी सविषेण कार्मुकहरी नक्रेण नित्यद्विषौ।
तद्वत् कुम्भतुले झषेण, वशगा सिंहं विनाऽन्ये नृणां
तद्भोज्या जलचारिणो हरिवशाः सर्वे विना वृश्चिकम् ॥१०॥

सं०—चापाजौ (धनुर्मेषौ) वृषभेण, कुम्भमिथुनौ कर्केण, मेषः स्त्रिया कन्यया, शैलाग्नी (तुलमिथुनौ) सविषेण (वृश्चिकेन), कार्मुकहरी (धनुःसिंहौ) नक्रेण (मकरेण सह) नित्यद्विषौ, तद्वत् कुम्भतुले झषेण (मीनेन) नित्यद्विषौ ज्ञेयौ। अथ वश्यमैत्रीं कथयति—सिंहं विनाऽन्ये सर्वे राशयो नृणां द्विपदानां वशगाः, जलचारिणः (जलचरराशयः) तद्भोज्याः (तेषां नृराशीनां भक्ष्याः) तथा वृश्चिकं विना सर्वे राशयः हरिवशाः (सिंहस्य वश्याः) भवन्ति ॥ १० ॥

भा०—धनु, मेष को वृष से, कुम्भमिथुन को कर्क से, मेष को कन्या से, तुला मिथुन को वृश्चिक से, धनुसिंह को मकर से और कुम्भतुला को मीन से स्वाभाविक शत्रुता है। वश्य कहते हैं—सिंह को छोड़ कर सब राशि द्विपद के वश में हैं, और जलचर राशि द्विपद राशि का भक्ष्य है। और वृश्चिक को छोड़कर सब राशि सिंह के वश्य हैं ॥ १० ॥

वि०—इससे परस्पर द्विर्द्वादश, और षट्काष्टक में शत्रुता तथा अन्य (समसप्तक, चतुर्थदशम, तृतीयैकादश) में परस्पर मित्रता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

राशिमैत्रग्रहमैत्रयोरन्यतरलाभेऽपि शुभत्वं कथयति—

स्याद्राशिमैत्रीधुरि कुम्भहर्योः करग्रहस्तद्ग्रहविग्रहेऽपि ।
तस्यामसत्यां मृगराजमीनावप्याहृतौ तद्ग्रहयोः सुहृत्त्वे ॥११॥

सं०—कुम्भहर्योः (कुम्भसिंहयोः समसप्तकत्वात्) राशिमैत्रीधुरि (राशिमैत्र्यां सत्यां) तद्ग्रहविग्रहे (तयोः स्वामिनोः शत्रुत्वे) अपि करग्रहः स्यात् । तथा तस्यां (राशिमैत्र्यां) असत्यां अपि तद्ग्रहयोः (तत्स्वामिनोः) सुहृत्त्वे मृगराजमीनौ आहृतौ षट्काष्टकत्वेऽपि स्वामि-सुहृत्वात् सिंहमीनौ स्वीकृतावित्यर्थः ॥११॥

भा०—कुम्भ सिंह में राशि मैत्री होने के कारण उनके स्वामियों (शनि, सूर्य) में शत्रुता रहने पर भी विवाह शुभ कहा गया है । तथा—सिंह और मीन में राशि मैत्री नहीं होने पर भी उनके स्वामियों (सूर्य गुरु) में मैत्री होने के कारण विवाह में सिंह और मीन स्वीकृत है । अर्थात् राशि मैत्री स्वामिमैत्री दोनों में एक भी हो तो विवाह शुभ है यदि दोनों हो तो बात ही क्या है ॥११॥

अथात्र प्रश्नं तदुत्तरं च कथयति—

पत्योर्विरोधे सति भृत्ययोः स्यान्मेलेप्यमेलस्तदलं भमैत्र्या ।
अत्रोच्यते किं न मिथो वधः स्यादेकस्य सेनानरयोर्विरोधात् १२

सं०—पत्योः (स्वामिनोः) विरोधे सति, भृत्ययोः मेलेऽपि अमेलः स्यात्, तत् तस्मात् भमैत्र्या अलं (न प्रयोजनम्) । अत्र (अस्मिन् प्रश्ने) उच्यते—एकस्य सेनानरयोः (सैन्यपुरुषयोः) मिथो विरोधात् किं वधो न स्यात् ? अपि तु वधः स्यादेवातो राशिमैत्रमेव प्रधानम् ॥१२॥

भा०—स्वामियों में विरोध रहने पर नौकरों में यदि मेल भी हो तो वह अमेल (विरोध) ही समझा जाता है । इसलिये राशिमैत्री व्यर्थ ही है, इस प्रकार के प्रश्न में उत्तर यह है कि—एक ही राजा की सेनाओं में परस्पर विरोध होने पर क्या वध नहीं होता है ?, अर्थात् अवश्य हो जाता है । अतः राशिमैत्री ही में प्रधानता सिद्ध हुई ॥ १२ ॥

अत्र पुनः प्रत्युत्तरं कथयति—

अपश्यति स्वामिनि तद्वधश्चेद् गृहेश्वराणां किमदृष्टमस्ति ।
अतोऽधिकं चेत्प्रभुसख्यमेव ततो गतिः का समसप्तकस्य ॥१३॥

सं०—स्वामिनि अपश्यति तद्वधः (तयोः सेनानरयोर्वधः) चेत् । तर्हि गृहेश्वराणां (राशिस्वामिनां = खगानां) किं अदृष्टम् ? न किमपि, अर्थात् सर्वं दृष्टमेव । अतः प्रभुसख्यमेवाधिकम् । एवं चेत् तदा समसप्तकस्य का गतिः ? इत्युच्यताम् ॥ १३ ॥

भा०—यदि ऐसा कहा जाय कि—स्वामी के परोक्ष में ही सेना में विरोध होने से वध होता है, स्वामी के समक्ष में नहीं ? तो फिर राशीश्वरों (ग्रहों) के कौन स्थान अदृश्य हैं ? अर्थात् वे सब को देखते हैं । इसलिये स्वामियों की मैत्री ही विशेष है । यदि स्वामी की मैत्री ही विशेष है तो फिर समसप्तक (कुम्भ सिंह आदि) राशियों की ग्राह्यता की क्या गति होगी ? ॥ १३ ॥

अथात्र सिद्धान्तं कथयति—

स्वभावमैत्री सखिता स्वपत्योर्वशित्वमन्योन्यभयोनिशुद्धिः ।
परः परः पूर्वगमे गवेष्यो हस्ते त्रिवर्गी युगपद्युतिश्चेत् ॥१४॥

सं०—'राश्योः' स्वभावमैत्री १, स्वपत्योः सखिता २, वशित्वम् ३, अन्योन्यभयोनिशुद्धिः ४, 'एषु चतुर्षु पदार्थेषु' पूर्वगमे पूर्वालाभे परः परो गवेष्योऽन्वेषणीयः (अर्थादादौ स्वभावमैत्री (समसप्तकादिका) गवेष्या, तदलाभे स्वपत्योः सखिता (मैत्री), तदभावे राश्योर्वशित्वम्, तदलाभे भयोनिशुद्धिर्गवेष्या । चेत् युगपद्युतिः (चतुर्णां प्राप्तिः) तदा हस्ते त्रिवर्गी (त्रयाणां 'धर्मार्थकामानां' वर्गाणां समाहारस्त्रिवर्गी) स्यात् ॥

भा०—राशियों की स्वभावमैत्री १, स्वामियों की मैत्री २, वशित्व ३, और नक्षत्र योनि मैत्री ४, इन चारों में क्रमशः पूर्व के अभाव में पर, पर को देखना चाहिये । अर्थात् प्रथम राशियों को स्वभावमैत्री (समसप्तकादि) देखना, इसके अभाव में स्वामियों की मैत्री देखना, इसका भी अभाव हो तो वशित्व देखना, इसके अभाव में नक्षत्रयोनि की शुद्धि देखना, यदि साथ ही चारों की शुद्धि मिल जाय तब तो त्रिवर्ग (धर्म, काम, अर्थ तीनों) ही हस्तगत समझना अर्थात् इनमें जितने अधिक मिले उतना अच्छा है ॥ १४ ॥

अथ ग्रहाणां तात्कालिकमैत्रीं कथयति—

आपार्श्वकेन्द्रद्वयगाः प्रसूतौ तत्कालमित्राणि मिथः खपान्थाः ।
न्यूनामपि स्त्रीनरभृत्यराज्ञां तत्कालसख्यं विशिनष्टि मैत्रीम् ॥१५॥

सं०—प्रसूतौ जन्मकाले, आपार्श्वकेन्द्रद्वयगाः स्वस्वपार्श्वकेन्द्रद्वयमध्यस्थाः, खपान्थाः ग्रहाः मिथस्तत्कालमित्राणि भवन्ति, अर्थादन्ये शात्रवो भवन्ति। इदं तत्कालसख्यं स्त्रीनर-भृत्यराज्ञां (स्त्रीनराणां, भृत्यस्वामिनां च) न्यूनामपि मैत्रीं (स्वाभाविकग्रहमैत्रीं) विशिनष्टि विशेषयति। अर्थात् स्वाभाविकसमोऽपि तत्कालमैत्र्या मित्रं भवति, स्वाभाविकशत्रुस्तु तत्कालमैत्र्या समत्वं व्रजति, स्वाभाविकमित्रं तु अधिमित्रं भवतीत्यर्थः ॥

भा०—जन्मकुण्डली में ग्रहों के अपने स्थान से दोनों तरफ के दो केन्द्रों के बीच में (अर्थात् २, ३, ४, १२, ११, १० इन स्थानों में) स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं। यह तात्कालिक मैत्री कन्यावर, और मालिक नौकर की अल्प भी स्वाभाविक ग्रहमैत्री को विशेष बनाता है। अर्थात् तात्कालिक मैत्री से—स्वाभाविक शत्रु भी सम, और स्वाभाविक सम मित्र और स्वाभाविक मित्र अधिमित्र हो जाता है ॥१५॥

अथ ग्रन्थकारः स्वदेशाभिप्रायिकवर्णमैत्रीं कथयति—

षट्कर्मणां शासितदेवदैत्यौ राजन्यकस्याधिपती कुजार्कौ।
विट्-शूद्रयोश्चन्द्र-बुधौ शनिश्च संकीर्णपः स्त्रीनृषु वर्णमैत्री ॥१६॥

सं०—शासितदेवदैत्यौ (गुरुशुक्रौ) षट्कर्मणां (ब्राह्मणानां) अधिपती, कुजार्कौ राजन्यकस्य क्षत्रियस्याधिपती, चन्द्रबुधौ क्रमेण विट्छूद्रयोः अधिपती (वैश्यस्य चन्द्रः, शूद्रस्य बुध इत्यर्थः), शनिश्च संकीर्णपः (संकराणां हीनवर्णानां पतिः) एवं स्त्रीनृषु कन्यावरेषु वर्णमैत्री विचार्या। अर्थात् वधूवरयोः राशीशयोर्वर्णौ विलोक्यौ, तत्रोत्तमवर्णो वरः श्रेष्ठः, समवर्णः समः, हीनवर्णस्तु निकृष्ट इति।

इयं वर्णमैत्री ग्रन्थकारेण स्वदेशाभिप्रायेणोक्ता, अन्यदेशेषु तु—"द्विजा झषालिकर्कटास्ततो नृपा विशोऽङ्घ्रिजाः। वरस्य वर्णतोऽधिका वधूर्न शस्यते बुधैः" इत्यनेनैव वर्णमैत्री ग्राह्या ॥ १६ ॥

भा०—गुरु शुक्र ब्राह्मणों के अधिपति हैं, सूर्य और मंगल क्षत्रियों के, चन्द्रमा वैश्यों का, बुध शूद्रों का, और शनि अन्त्यजों का अधिपति है। वरकन्या की राश्यधिप से वर्णमैत्री देखना चाहिये। यथा कन्या से उच्चवर्ण वर श्रेष्ठ, समानवर्ण मध्यम, और हीनवर्ण अधम होता है ॥ १६ ॥

वि०—ग्रन्थकारने अपने देश के अभिप्राय से यह वर्णमैत्री कहा है—अन्य देशों में—'द्विजा झषालिकर्कटाः' इत्यादि राशियों के वर्णमैत्री देखना चाहिये १६

अथ यवनजातकोक्तग्रहमैत्रीं कथयति—

सुरगुरुर्ज्ञगुरू कविकोविदौ विरवयो विकुजा विरवीन्दवः ।
अशशिसूर्यकुजाः सुहृदो रवेर्यवनयुक्तिरियं न यवीयसी ॥१७॥

सं०—सुरगुरुः, ज्ञ-गुरू, कविकोविदौ, विरवयः, विकुजाः, विरवीन्दवः, अशशिसूर्यकुजाः, इति रवेः (रविमारभ्य) क्रमेण सप्तग्रहाणां सुहृदः (मित्राणि) स्युः । मित्रतोऽन्ये शत्रव इत्यर्थादेव सिद्ध्यति । इयं यवनयुक्तिः न यवीयसी (न लघुतरा), अपि तु गरीयस्येव ॥१७॥

भा०—सूर्य के बृहस्पति, चन्द्रमा के बुध, बृहस्पति, मङ्गल के बुध, शुक्र, बुध के रवि छोड़कर सब ग्रह, बृहस्पति के मङ्गल छोड़कर सब ग्रह, शुक्र के रवि चन्द्र को छोड़कर शेष सब ग्रह, तथा शनि के चन्द्र रवि मङ्गल छोड़कर शेष तीन ग्रह मित्र हैं । अर्थात् मित्र से अन्य ग्रह शत्रु हैं । यह यवनाचार्य की युक्ति छोटी (अमान्य) नहीं है, अर्थात् माननीय है ॥१७॥

यवनयुक्तिः कथं न यवीयसीत्याह—

इदमुदीर्य वराहविरोचनो निजमतेऽपि न दूषितवान्पुनः ।
स बहु मन्यत एव यथातथं जयति शास्त्रमिदं यवनेष्वपि ॥१८॥

सं०—वराहविरोचनः (वराहमिहिरः) अपि इदं (उपरोक्तं ग्रह-मैत्रं) निजमते (बृहज्जातके) उदीर्य (उक्त्वा) पुनर्न दूषितवान् । यवनेष्वपि इदं शास्त्रं यथातथं बहु अतिशयं जयतीति-स (वराहमिहिरः) मन्यत एव (स्वीकरोत्येवेति) ॥१८॥

भा०—वराहमिहिरार्य ने भी उपरोक्त यवनोक्त ग्रह-मैत्री अपने बृहज्जातक में में कहकर फिर उसे दूषित नहीं किया । क्योंकि—'यवनों में भी यह शास्त्र यथार्थ रूप से वर्तमान है' इस प्रकार वराह मिहिर भी मानते ही हैं ॥१८॥

यवनमतं कथं मन्यते इत्याह—

परमतं स्वमते विनिवेशितं यदि न दूषितमादृतमेव तत् ।
कलितकेवलसत्यमतः स तद्यवनयुक्तिषु नूनमनिस्पृहः ॥१९॥

सं०—यदि स्वमते विनिवेशितं परमतं न दूषितं तदा तत् (परमतं)

आद्दतमेव । स वराहमिहिरः कलितकेवलसत्यमतः (कलितं संगृहीतं केवलं सत्यस्य सत्याचार्यस्य मतं येन स तथोक्तः) सन् यवनयुक्तिषु (यवनाचार्योक्तिषु) नूनं अनिस्पृहः (स्पृहायुक्तः) स्यात् ॥ १९ ॥

भा०—यदि अपने मत में दूसरों का मत रख कर उसमें दोष न दिया जाय तो वह (परमत) स्वीकृत ही समझा जाता है । अतः केवल सत्याचार्य के वचनों को संग्रह करने वाले वराहमिहिर ने भी निश्चय यवनाचार्यों की कही उक्त ग्रहमैत्री में स्पृहा की है ॥ १९ ॥

यवनयुक्तिषु स्पृहयैव वराहेण "केषाञ्चिदेवं मतम्" इत्यल्पमतत्वं प्रतिपाद्य न खण्डितमित्याह—

किमबहुत्वमयं मिहिरो दिशन्ग्रहसुहृत्त्वमिदं जगृहे हृदि ।
उभयथापि समं सति तन्मते महति केऽपि भवेम वयं यतः ॥२०॥

सं०—अयं मिहिरः इदं 'यवनोक्तं' ग्रहसुहृत्त्वं दिशन् कथयन् हृदि (मनसि) अबहुत्वं (अल्पमतत्वं) किं जगृहे (किं गृहीतवान् ?), अर्थादल्पमतत्वात् कथं न खण्डितम् ? । अत्रोच्यते—यतः 'तन्मते (तस्य यवनस्य मते) महति सति वयं केपि भवेम' सत्याचार्यमते महति सति वयं महान्त एवेत्युभयथापि (उभयत्रापि) समं तुल्यं स्यात् ॥ २० ॥

भा०—वराहमिहिरने यवनमैत्रीको कहते हुए हृदयमें उसका अल्पमतत्व क्यों रखा ? । खण्डन क्यों न किया ? इसका उत्तर कहते हैं—क्योंकि यवनाचार्यका मत श्रेष्ठ माना जाय तो हम भी श्रेष्ठ समझे जायँगे, सत्याचार्यके मत श्रेष्ठ होनेसे तो हम श्रेष्ठ हैं ही, इस प्रकार दोनों पक्ष बराबर अर्थात् दोनों हाथ लड्डू है ॥

स बहुसम्मतमनुसरतीति चेत् तदप्यसङ्गतमेवेत्याह—

बहुतरैः कृतमेव कृती स चेदनुससर्ति तदप्ययथातथम् ।
पृथगपि द्विगुणे त्रिगुणे सकृत्त्रिगुणमित्यबहूक्तिरियं यतः ॥२१॥

सं०—स कृती (वराहमिहिरः) बहुतरैः कृतमेवानुससर्ति (बहुसम्मतमेवानुसरति) इति चेत् तदप्ययथातथम् (असङ्गतम्), यतः पृथक् द्विगुणे, त्रिगुणे 'प्राप्ते' अपि "सकृत् त्रिगुणम्" इयं अबहूक्तिः (अल्पजनोक्तिरेव) । वराहमिहिरेण तु "द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुणम्" इत्युक्तमतः स न बहुसम्मतावलम्बीति सिद्ध्यति । तथाह कल्याणवर्मा—

"बहुताडनसम्प्राप्तौ यां करोत्येकवर्गणाम्।
वराहमिहिराचार्यैः सा न दृष्टा पुरातनैः॥" इति ॥२१॥

वि०—ग्रन्थकारेण वराहमिहिरस्याशयमबुध्वैव जल्पितम्। वराहमिहिरेण तु—श्लोकपूर्वार्धेन यवनादिग्रहमैत्रेऽल्पसम्मतत्वं प्रतिपाद्य, द्वितीयार्धेन—"सत्याद्युक्तमेव ग्रहमैत्रं ग्राह्यमिति—स्वजातके—'स्वलक्षणविधेर्विरोधादन्यैर्यवनादिभिः प्रतिपादितं ग्रहमैत्रं न ग्राह्य''मिति च स्पष्टमेवोक्तमिति विवेचनीयं विपश्चिद्भिः ॥२१॥

भा०—यदि ऐसा कहा जाय कि—'वराहमिहिराचार्य—बहुसम्मत को ही मानते हैं" तो यह भी असङ्गत ही है, क्योंकि—पृथक् पृथक् द्विगुण, त्रिगुण प्राप्त होने पर भी उन्होंने एक बार त्रिगुण करना ही कहा है, परञ्च ऐसी बहुतों की सम्मति नहीं है। इसलिये यवनोक्त मैत्री ग्राह्य है, यह ग्रन्थकार का आशय है॥

अथ नवांशसख्ये विशेषं कथयति—

अभिदुरावधिपौ सृजतः शुभं शशिनवांशकयोरिति देवलः।
तदपि चारु न चारुषितैर्मुखैर्व्यवहरन्ति तथा वितथाशयाः॥२२॥

सं०—शशिनवांशकयोः अभिदुरौ (अभिन्नौ, मिथः सुहृदौ वा) अधिपौ शुभं सृजतः (कुरुतः) इति देवलो मुनिः कथितवान्। तत् (देवलोक्तं) चारु (सुष्ठुतरं) अपि आरुषितैः, रोषपरिपूरितैर्मुखैः वितथाशयाः (तुच्छहृदया जनाः) तथा न व्यवहरन्ति चन्द्रनवांशसंख्यं न स्वीकुर्वन्तीत्यर्थः ॥२२॥

भा०—'वर कन्या के चन्द्रनवांशके पतियों में मैत्री हो तो शुभ होता है' यह देवल मुनि ने कहा है। परञ्च उसे शुभ होने पर भी कितने तुच्छ आशयवाले रुष्टमुख होकर उस प्रकार (मुनिकथनानुसार) उसे व्यवहार में नहीं लाते हैं॥

पुनर्विशेषं कथयति—

लवदृशैव हि लग्नदृशं विना फलममंसत येऽपि करग्रहे।
शशिनवांशसखित्वपराङ्मुखाः किमलमस्तु गतानुगतं जगत् २३

सं०—येऽपि 'आचार्याः' लग्नदृशं विना लवदृशैव (नवांशदृष्ट्यैव) करग्रहे (विवाहे) फलं अमंसत (मन्यन्ते स्म) तेऽपि शशिनवांशसखित्वपराङ्मुखाः किं स्युः? इत्यलमस्तु जगत् गतानुगतं स्यात् ॥२३॥

भा०—जो लग्नदृष्टि को छोड़कर केवल नवांशदृष्टि से ही फल मानते हैं, वे भी चन्द्रनवांश मैत्री से क्यों विमुख होते हैं। अस्तु यह बात दूर ही रहै, संसार गतानुगतिक है (अर्थात् एक को जैसे करते देखता, वैसा दूसरा करता, फिर उसे देख तीसरा करता है; अर्थात् चन्द्रनवांशमैत्री नहीं मानना अन्धपरम्परा है) ॥

अथ नवांशचिन्ताध्यायः।

तत्र नवांशोपपत्तिव्याजेन यवनमैत्रीं द्रढयति—

नवलवाधिपती उदयास्तयो-रनिमिषार्चितचान्द्रमसायनौ।
वरपतिंवरयोः समवैरिणौ यदि तदिष्टफलेष्वपि फल्गुता ॥ १ ॥

सं०—उदयास्तयोः (लग्नसप्तमभावयोः) नवलवाधिपती नवांशस्वामिनौ यदि—अनिमिषार्चितचान्द्रमसायनौ (गुरुबुधौ) 'सत्याचार्यमतेन' समवैरिणौ, भवतस्तत् (तदा) इष्टफलेष्वपि फल्गुता (विफलता) स्यात् ॥ १ ॥

भा०—'सत्याचार्य के मत से' परस्पर समशत्रु गुरु और बुध यदि क्रम से लग्न और सप्तमभाव के नवांश पति हो (अर्थात् लग्न सप्तम में धनु और मिथुन के नवांश हो) तो इष्टफल में भी व्यर्थता हो जायगी ॥ १ ॥

वि०—विवाहलग्न पतिस्थान और सप्तमभाव जाया स्थान है अतः उन दोनों के नवांशपति में मैत्री होने से वरवधू में भी मैत्री हो सकती है। इस विचार से लग्न में द्विपदराशियों के नवांश प्रशस्त हैं। जैसे मिथुन, धनु। परञ्च सत्याचार्य के मत से दोनों के अधिप सम शत्रु हैं, अतः प्रशस्त में भी अशुभत्व हो जायगा; और यवनोक्तमैत्री से मिथुन, धनु के स्वामियों में परस्पर मैत्री है, अतः यवनमैत्री से द्विपद नवांश में शुभत्व हो सकता है, सत्याचार्य के मत से नहीं ॥ १ ॥

अतो यवनोक्तसौहृदमेव ग्राह्यमित्याह—

तदुदयद्विपदांशनियामको यवनसौहृदमाद्रियतां जनः।
इतरथा कथमस्तु करग्रहस्तनुफलं हि लवानवलम्बते ॥ २ ॥

सं०—तत् तस्मात् उदयद्विपदांशनियामकः (लग्ने द्विपद्नवांशप्रयोजकः) जनः यवनसौहृदमाद्रियताम्। इतरथा (सत्याचार्योक्तग्रहमैत्र्या द्विपदभिन्ननवांशे) करग्रहः (विवाहः) कथं स्यात्। हि(यतः) तनुफलं लवान् नवांशान् अवलम्बते आश्रयते। तथोक्तं प्राचीनैः—

"लग्ने द्विपदगृहांशे शुभफलमन्यांशकोदये नेष्टम् ॥ २ ॥

भा०—इसलिये लग्न में द्विपद नवांश को शुभ मानने वाले यवन मैत्री को स्वीकार करें। अन्यथा (नवांश मैत्री विना) विवाह कैसे हो सकता है? क्योंकि लग्न का फल नवांश के आश्रित है ॥ २ ॥

अथान्याशङ्कां तद्दोषं च कथयति—

अथ रिपू यदि नोभयसप्तमौ तदयशः कलशस्य किमागतम्।
द्विपदतां दधतोऽथ शुभर्क्षता यदि वृषानिमिषौ किमुपेक्षितौ ॥३॥

सं०—अथ यदि उभयसप्तमौ रिपू न 'समसप्तकयोः स्वभावमित्रत्वात्' तत् (तदा) द्विपदतां दधतः कलशस्य (कुम्भस्य) अयशोऽशुभत्वं किमागतम्?। अथ नवांशग्रहणे यदि शुभर्क्षता (शुभस्वामित्वमेव मुख्यं) तर्हि वृषानिमिषौ (वृषमीनौ) शुभस्वामिनौ किं उपेक्षितौ परित्यक्तौ? ॥ ३ ॥

भा०—यदि ऐसा कहा जाय कि परस्पर सप्तम में मैत्री होती है इसलिये धनुमिथुन द्विपद होने के कारण शुभ है—तो फिर कुम्भके उत्तरार्धमें द्विपद होने पर अशुभत्व क्यों हुआ?। कहो, कि नवांशमें शुभर्क्षता (शुभग्रहकी राशि होना) ही प्रधान है—तो फिर वृष और मीन क्यों त्याग कर दिये गये? ॥ ३ ॥

पुनः प्रत्युत्तरं कथयति—

अमनुजाविति चेत्किमु शौनको नवलवं झषमादृतवान्मुनिः।
शुभगृहद्विपदास्तलवः स चेद् भवतु तत्र किमस्तु तुलाधरः ॥ ४ ॥

सं०—तौ वृषमीनौ—अमनुजौ (द्विपदभिन्नौ) इति चेत्—तर्हि शौनको मुनिः झषं नवलवं किमु आदृतवान्। तथा च तद्वाक्यम्—"प्रहसितवदना च मीनांशे" इति। अथ स मीनः शुभगृहद्विपदास्तलवः (शुभस्य गृहं, द्विपदोऽस्तलवो यस्य स तथोक्तः) इति चेत् भवतु तदा तत्र तुलाधरः (तुलाराशिः) किमस्तु (लग्ने तुलनवांशः कथमस्त्वित्यर्थः)।

भा०—वृष और मीन शुभग्रह की राशि होने पर भी द्विपद नहीं हैं—इसलिये अग्राह्य है, ऐसा कहा जाय तो—शौनक मुनि ने मीननवांश को क्यों ग्रहण किया?। कहो कि—मीन शुभग्रह की राशि है और उससे सप्तम द्विपद (कन्या) का नवांश होता है इसलिये ग्राह्य है, तब तुला क्या होगा? तुला से सप्तमनवांश मेष का है वह तो न शुभराशि है न द्विपद है तो फिर तुला क्यों ग्राह्य हुआ ॥४॥

अत्र पुनः प्रत्युत्तरं कथयति—

द्विचरणः शुभभं च नवांशकस्तदयमेकतरः परिगृह्यते ।
इदमसंगतमंग तवेरितं जगति नैकवशात् किल सौहृदम् ॥ ५ ॥

सं० - नवांशको द्विचरणः, शुभभं च भवति, तदयं (नवांशकः) एकतरः (द्विचरणो वा शुभभं वा) परिगृह्यते, एवं त्वयोच्यते चेत्, तदा हे अङ्ग ! इदं तवेरितं (त्वया कथितं) असङ्गतमेव । किल यतो जगति संसारे एकवशात् सौहृदं न भवति ॥ ५ ॥

भा०—यदि ऐसा कहो कि—द्विपद और शुभग्रह की राशि इन दो में से एक भी हो तो ग्रहण किया जाता है । परन्तु हे मित्र ! तुम्हारा यह भी कहना असङ्गत है, क्योंकि संसार में केवल एक से ही मैत्री नहीं होती है ॥ ५ ॥

अथात्र सिद्धान्तमाह—

खचरयोः सखिता यदि कारणं ध्वनति सा नितरां यवनाध्वनि ।
कलशसिंहनवांशपशत्रुता परिणमत्युभयोरपि शास्त्रयोः ॥ ६ ॥

सं०—यदि खचरयोः (उदयास्तांशाधिपयोः) सखिता (मैत्री) एव कारणं स्यात् तदा सा (सखिता = ग्रहमैत्री) यवनाध्वनि यवनाचार्यमार्गे नितरां ध्वनति (शब्दायते सर्वत्र प्रसिद्धेत्यर्थः) । सत्याचार्यमतेन धनुर्मिथुनयोः सखित्वाभावाद् यवनमैत्रमेव साधुतरमिति भावः । कुम्भ सिंहांशत्यागे युक्तिं कथयति—उभयोः (यवन-सत्याचार्ययोर्द्वयोः) अपि शास्त्रयोः कलशसिंहनवांशपशत्रुता परिणमति । अतो यवनमैत्र्यापि तत्त्याज्यता सिद्ध्यत्यतो यवनमतमेव प्रधानमित्याचार्यस्याभिप्रायः ॥ ६ ॥

भा०—यदि लग्न सप्तम के नवांशाधिपों में मैत्री होना ही कारण हो तो—वह मैत्री यवनशास्त्र में ही प्रसिद्ध है । सत्याचार्य के मत से धनु मिथुन के स्वामियों में मैत्री नहीं है । और कुम्भ सिंह के स्वामियों में शत्रुता तो दोनों ही (यवन और सत्याचार्य) के शास्त्र में प्रसिद्ध है । "इसलिये यवनमत से भी कुम्भ सिंह त्याज्य है, अतः यवन ही का मत श्रेष्ठ है" यह आचार्य का आशय है ॥ ६ ॥

नवांशपतिमैत्री विचार्यते चेत्तर्हि राशिपतिमैत्री किं नेत्याह—

अथ तयोः समसप्तसुहृत्पथः कथमसूक्ष्मगतिः स च नैकधा ।
इह हि लग्नगतान्यनुमेनिरे तदखिलैः खलखेटगृहाण्यपि ॥ ७ ॥

सं०—अथ तयोः (यवन-सत्याचार्यमतयोः) समसप्तसुहृत्पथः कथं असूक्ष्मगतिः ? अपि तु सूक्ष्मगतिरेव । स च (सुहृत्पथः) हि यतः एकधा न, अपि तु तत्कालनिसर्गभेदाद् द्विधाऽस्ति, तत् तस्मात् इह (विवाहे) अखिलैः (समस्तैः = यवनसत्यादिभिः) खलखेटगृहाणि (पापभानि) अपि अनुमेनिरे, किं पुनः शुभगृहाणीत्यर्थः ॥ ७ ॥

भा०—परस्परसमसप्तक मैत्री दोनों (यवन और सत्याचार्य) के शास्त्र में असूक्ष्म कैसे हो सकता है ? अर्थात् सूक्ष्म ही है । परञ्च वह मैत्री एकही प्रकार का नहीं हैं, अर्थात् तात्कालिक नैसर्गिक भेद से अनेक प्रकार है । इसलिये सब (यवन-सत्य आदि) आचार्यों ने पापग्रहराशियों को भी स्वीकार किया है, अर्थात् लग्न में सब राशि गृहीत है ॥ ७ ॥

तत्रापि पूर्णशुभफलादिकत्वं प्रतिपादयति—

इति तुलाजितुमप्रमदाधनुः-प्रथमखण्डमखण्डफलं जगुः ।
सततमस्तपतिद्विषदीश्वरं नवलवं बलवन्ध्यपतिं त्यजेत् ॥ ८ ॥

सं०—इत्यस्मात् (उपरोक्तकारणात) तुला-जितुम-प्रमदा-धनुः-प्रथमखण्डं सततं (अनवरतं) अखण्डफलं (पूर्णशुभफलं) जगुः (आचार्या ऊचुः) । अथात्र विशेषं कथयति—अस्तपतिद्विषदीश्वरं (अस्तपतेः सप्तमेशस्य द्विषत् शत्रुः ईश्वरो यस्य तं) नवलवं तथा बल-वन्ध्यपतिं (बलने वन्ध्यः पतिर्यस्य तं) नवलवं (नवांशं) च त्यजेत् ॥

भा०—उपरोक्त कारणों से—तुला, मिथुन, कन्या और धनु का पूर्वार्ध इनमें शुभ फल होता है । ऐसा प्राचीनाचार्यों ने कहा है । सप्तमेश के शत्रु जिस राशि का स्वामी हो उस नवांश को तथा जिसका स्वामी निर्बल हो उस नवांश को त्याग देना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ लग्नसप्तमयोः शुद्धिं कथयति—

लवपतिः कुरुते लवलग्नयोः पतिमृतिं त्रिवसुव्ययवित्तगः ।
नवलवास्तपतिः प्रतिहन्त्यसून् मृगदृशश्च तदस्तभयोस्तथा ॥ ६ ॥

सं०—लवपतिः (नवांशस्वामी) लवलग्नयोः त्रिवसुव्ययवित्तगः पतिमृतिं (वरमरणं) कुरुते । तथा नवलवास्तपतिः (नवांशसप्तमेशः) तदस्तभयोः (नवांशसप्तमात्-लग्नसप्तमाद्वा) तथा (त्रिवसुव्ययवित्तगः) मृगदृशः (कन्यायाः) असून् प्राणान् प्रतिहन्ति (नाशयति) ॥ ६ ॥

भा०—लग्नगतनवांश का स्वामी नवांश से अथवा लग्न से ३, ८, १२, २* इन स्थानों में हो तो वर का नाश करता है। यदि नवांश का सप्तमेश नवांश-सप्तम से वा लग्नसप्तम से ३, ८, १२, २, में हो तो कन्या का नाश करता है।

उभयदृक् फलदा बलदाढ्र्यतो लवदृगुद्वहते कियदूनताम् ।
तदिह केवललग्नदृशः फलं शकलितं कलितं यवनेश्वरैः ॥१०॥

सं०—उभयदृक् (उभयस्य = लग्नस्य, नवांशस्य च दृष्टिः) बल-दार्ढ्यतो (बलदृढत्वात् कारणात्) फलदा (विशिष्टफलप्रदा) स्यात् । लवदृग् (केवलनवांशदृष्टिः) कियदूनतां (किञ्चिन्न्यूनतां) उद्वहते । तत् (तस्मात्) इह (विवाहे) केवललग्नदृशः फलं यवनेश्वरैः शकलितं (खण्डितम् = अर्धितं) कलितम् (कथितमित्यर्थः) ॥ १० ॥

भा०—लग्न और नवांश दोनों की दृष्टि विशेषबल होने के कारण सम्पूर्ण फल देती है। केवल लग्न की दृष्टि कुछ न्यून फल देती है। इसलिये यवनाचार्य ने केवल लग्न दृष्टि का फल खण्डित (आधा) कहा है ॥ १० ॥

उक्तार्थमेव द्रढयति—

स्पृशति किं न कदाचिददृश्यतामवयवोऽवयविन्यवलोकिते ।
अमतकेवललग्नदृशां न तन्मतमतर्कसहं समुपास्महे ॥११॥

सं०—अवयविनि अवलोकिते सति कदाचित् अवयवः किं अदृश्यतां न स्पृशति ? अपि तु स्पृशत्येव । तत् तस्मात् अमतकेवललग्नदृशां (न मता केवललग्नदृग् येषां तेषां) जनानां मतं न अतर्कसहं (युक्तियुतमेवेत्यर्थः) वयं समुपास्महे (सम्यक् मन्यामहे) ॥ ११ ॥

भा०—अवयवी को देखने पर भी कदाचित् कोई अवयव क्या अदृश्य नहीं होता है ? अवश्य अदृश्य होता है। इसलिये केवल लग्नदृष्टि को नहीं माननेवाले (अर्थात् लग्न और नवांश दोनों की दृष्टि माननेवाले) का मत युक्ति युत है उसे हमलोग विशेष करके मानते हैं ॥ ११ ॥

ननु नवांशकमंशपतिर्निजं कलयतीह विलग्नविलोकने ।
यमवलोकयते स तनोः पृथग्यदि तदिष्टफलाय जलाञ्जलिः ॥१२॥

---

* इन स्थानों में रहने से लग्न वा नवांशपर ग्रह की दृष्टि नहीं होती है।

सं०—इह (विवाहकाले) अंशपतिः विलग्नविलोकने सति निजं नवांशकं कलयति (पश्यति) । नवांशपतिः यं अवलोकयते स तनोः (लग्नात्) पृथक्, यद्येवं तदा तदिष्टफलाय जलाञ्जलिः स्यात् (लग्न-फलमपि नष्टमेवेत्यर्थः) ॥ १२ ॥

भा०—नवांशपति लग्न को देखने पर उसके मध्यस्थ अपने नवांश को भी देखता ही है । अगर ऐसा कहो कि—जिस नवांश को वह देखता है, वह लग्न से पृथक् है, तब तो लग्न के फल के लिये तिलाञ्जलि देना होगा (अर्थात् शुभ नवांशजन्य लग्न का शुभफल भी नहीं होगा) ॥ १२ ॥

अपृथगस्ति स चेन्ननु पश्यता तनुमसावधिपेन निरूपितः ।
हृदयहारदृशेव मृगीदृशः प्रणयिना तरलस्तरलद्युतिः ॥१३॥

सं०—ननु (अहो !) चेत् स (नवांशः) अपृथक् (लग्नान्तर्गत एव) अस्ति, तदा असौ (नवांशः) तनुं पश्यता अधिपेन (स्वस्वामिना) निरूपितः (दृष्ट एव) । 'केन क इव'—मृगीदृशः (स्त्रियाः) हृदयहारदृशा (हृदयहारे दृग्दृष्टिर्यस्य तेन) प्रणयिना प्रियेण तरलद्युतिस्तरलो हार-मध्यस्थमणिरिव । हारे दृष्टे तन्मध्यस्थो मणिरपि यथा दृष्टो भवति, तथैव लग्ने दृष्टे तदन्तर्गतनवांशोऽपि दृष्ट एवेत्यर्थः ॥ १३ ॥

भा०—यदि नवांश लग्न के अन्तर्गत ही है तब तो—लग्न पर स्वामी की दृष्टि होने से नवांश भी दृष्ट होगा, जैसे पति अपनी स्त्री के हृदयस्थितहार पर दृष्टि रखने से हार के मध्यस्थित मणि को भी देखता ही है ॥ १३ ॥

अथ परमतं दूषयति—

तनुपतिस्तनुमस्तमथास्तपो यदि न पश्यति नश्यति तत्कृतम् ।
इति परः परमत्र मते पतेल्लवतरौ वत रौद्र इवाशनिः ॥१४॥

सं०—"यदि तनुपतिः तनुं, तथास्तपोऽस्तं (सप्तमं) न पश्यति तदा तत्कृतं 'शुभफलं' नश्यति" इति परः प्राह । परं वत 'इति खेदे' अत्र मते लवतरौ (नवांशरूपवृक्षे) रौद्रः कठोरः इव अशनिर्वज्रं पतेत् ॥

भा०—यदि लग्नेश लग्न को और सप्तमेश सप्तम को न देखे तो लग्न और नवांश का फल नष्ट हो जाता है, ऐसा किसी ने कहा है । परञ्च इस प्रकार के मत में तो नवांशरूपी वृक्ष पर कठोर वज्रपात ही है ॥ १४ ॥

अथ जन्मलग्नराशिभ्यामुदयास्तशुद्धिमाह—

जननलग्नभयोर्मृतिशाशितुर्मृतिगतस्य च राशिनवांशकाः ।
तनुगता यदि तत्तनुते वधूरतिलका तिलकाय जलाञ्जलिम् ॥१५॥

सं०—जननलग्नभयोः (जन्मलग्न-जन्मराशिभ्यां) मृतिशातितुः (अष्टमेशस्य), मृतिगतस्य (अष्टमस्थानस्थितस्य) च राशिनवांशकाः तनुगताः (लग्नस्थिताः) यदि स्युः, तत् तदा वधूः अतिलका स्वामिरहिता सती तिलकाय (स्वामिने) जलाञ्जलिं तनुते—'विधवा भवतीत्यर्थः' ।१५।

भा०—जन्मलग्न और जन्मराशि से अष्टमेश की राशि के वा अष्टमस्थान-स्थित ग्रह की राशि के नवांश लग्न में हो तो वह स्त्री विधवा होकर अपने स्वामी को जलाञ्जलि देती है ॥ १५ ॥

वि०—"स्वयं जलाञ्जलि देती है" इस शब्द से अनपत्यता योग भी सिद्ध होता है ॥ १५ ॥

अथाष्टमलग्नदोषं तत्परिहारं च कथयति—

व्यलिवृषं जननर्क्षविलग्नयोर्भवनमष्टममभ्युदितं त्यजेत् ।
सितपुलस्तिमतेन तदीशता तनुसमेति समेति न दूषणम् ॥१६॥

सं०—जननर्क्षविलग्नयोः (जन्मराशिलग्नाभ्यां) व्यलिवृषं (वृष-वृश्चिकभिन्नं) अष्टमभवनं अभ्युदितं (लग्नगतं) त्यजेत् । यतः तदीशता (तयोर्वृषवृश्चिकयोरीशता = स्वामिता) तनुसमा 'तत्स्वाम्येव लग्नस्यापि स्वामीत्यर्थः' इत्यस्मात् सितपुलस्तिमतेन दूषणं न समेति (नागच्छति) ॥

भा०—जन्मलग्न और जन्मराशि से वृष वृश्चिक से अतिरिक्त अष्टमराशि विवाहलग्न में छोड़ देना चाहिये । क्योंकि अष्टमस्थ वृश्चिक और वृष के स्वामी ही लग्न का भी स्वामी होता है, इसलिये शुक्र और पुलस्ति के मत से दोष नहीं आता है ॥ १६ ॥

वि०—मेष लग्न में अष्टम वृश्चिक, और तुला लग्न में अष्टम वृष पड़ता है, अतः एकाधिपत्य होने के कारण वृष, वृश्चिक अष्टम होने पर भी विवाह लग्न में ग्राह्य है । और अन्य त्याज्य है ॥ १६ ॥

अथ चरत्रययोगे दोषमाह—

चरलवश्चरवेश्मगमुत्सृजेन्मृगतुलाधरगे मृगलक्ष्मणि ।
युवतिरत्र भवेत्कृतकौतुका मदनवत्यनवत्यजनोन्मुखी ॥१७॥

सं०—मृगलक्ष्मणि चन्द्रे मृगतुलाधरगे सति चरवेश्मगं (चरलग्नगतं) चरलवं (चरनवांशं) उत्सृजेत् (त्यजेत्) । यतोऽत्र कृतकौतुका (विवाहिता) युवतिः मदनवती कामातुरा सती अनवत्यजनोन्मुखी (अनवस्य पुरातनस्य भर्तुः त्यजने उन्मुखी उत्सुका) भवति ॥१७॥

भा०—मकर वा तुला में चन्द्रमा हो तो चरलग्न में चरनवांश त्याज्य है । क्योंकि उसमें विवाहिता स्त्री कामातुरा होकर पूर्वपति को त्याग कर परपुरुष से प्रीति करने के लिये उत्कण्ठिता होती है ॥१७॥

अथ चतुर्थद्वादशभावयोर्दोषं तत्परिहारं चाह—

सुखगृहं सुखहृत्तनुजन्मनोरबलताशबलैः सुखकर्तृभिः ।
अपि तयोर्व्ययभं व्ययभंक्तृ चेद्विगतबाधनका धनकारिणः ॥१८॥

सं०—सुखकर्तृभिः (चतुर्थेशादिसुखभावसम्बन्धिग्रहैः) अबलताशबलैः (दौर्बल्यदूषितैः = निर्बलैः सद्भिः) तनुजन्मनोः (जन्मलग्नजन्मराश्योः) सुखगृहं चतुर्थस्थानं 'विवाहलग्नगतं' सुखहृत् भवति । तयोः (जन्मलग्न-राश्योः) व्ययभं द्वादशगृहं अपि 'विवाहलग्नगतं' व्ययभंक्तृ (व्ययनिवारकं) भवति—चेत् धनकारिणः (द्वितीयेशादिधनभावसम्बन्धिग्रहाः) विगतबाधनकाः (बाधारहिताः = सबलाःस्युः) तदा । निर्बलाश्चेत् तदा व्ययकारक एवेत्यर्थः ॥१८॥

भा०—चतुर्थेश आदि सुखकारक ग्रह निर्बल हो तो जन्मलग्न-जन्मराशि से चतुर्थ राशि विवाहलग्न में सुखनाशकारक होता है । तथा जन्मलग्न वा जन्मराशि से द्वादशराशि विवाहलग्न में पड़े और यदि द्वितीयेशादि धनकारक ग्रह पुष्टबली हो तो व्यय को भंग करनेवाला होता है । अर्थात् धनकारक ग्रह निर्बल हो तो व्ययकारक ही होता है ॥१८॥

जन्मकालिकपापगतनवांशदोषं तदपवादं च कथयति—

अशुभकृत्खलगः खलु योंशको जनुरनेहसि नेह सितांशुगे ।
तनुगतेपि शिवं युवयोषयोर्बलवतो लवतो न भयं क्वचित् ॥१९॥

सं०—जनुरनेहसि(जन्मकाले)अशुभकृत्खलगः योंऽशकः (नवांशः) अस्ति, इह (अस्मिन् नवांशे) सितांशुगे (चन्द्रगते)तनुगते (लग्नस्थे) अपि वा, युवयोषयोः (वरकन्ययोः) शिवं शुभफलं न स्यात् । परञ्च बलवतो लवतः (बलयुक्तान्नवांशात्) कचिद् भयं न स्यात् ॥ १९ ॥

भा०—जन्म समय में अशुभकारक पापग्रह जिस नवांश में हो वह विवाह-कालिक चन्द्रमा में वा लग्न में पड़े तो वर कन्या को शुभ फल नहीं होता है। परञ्च वह नवांश बलवान् (स्वामी-शुभ ग्रह से युत दृष्ट) हो तो कहीं कुछ भी भय नहीं होता है ॥१९॥

अथ दोषान्तरं कथयति--

अनुजनुर्मृतिगो मृतिपश्च यः स तनुगस्तनुते न शिवं क्वचित् ।
इति विविक्तिरियं फलदा सदा स इह सिद्ध्यति चेत्समयः स्फुटः ॥

सं०—अनुजनुः (जनुरनुक्रम्य = अनुजनुः, जन्मसमये इत्यर्थः) मृतिगः (अष्टमगतः) यः, मृतिपश्च (अष्टमपतिश्च) यः स तनुगतः (विवाहलग्नस्थः) क्वचित् शिवं (शुभं) न तनुते। इत्येवं इयं (पूर्वोक्ता) विविक्तिः (विवेकोक्तिः) 'तदैव' सदा फलदा स्यात्, चेत् यदि स समयः (जन्मेष्टकालः, विवाहेष्टकालश्च) स्फुटः सिद्ध्यति ॥२०॥

भा०—जन्मलग्न से अष्टमस्थान स्थित ग्रह और अष्टमेश जो हो वह ग्रह यदि विवाह लग्न में पड़े तो कभी शुभ नहीं होता है। इस प्रकार यह पूर्वोक्त विवेक तभी फलप्रद हो सकता है यदि जन्मेष्टकाल, और विवाहेष्टकाल अत्यन्त स्पष्ट हो। अन्यथा नहीं ॥ २० ॥

अथ लग्नबलाध्यायः ।

तत्र ग्रहाणां शुभाशुभस्थानानि कथयति—

अरिपराक्रमलाभविनाशगो रविरविश्रमसौख्यसुतार्थदः ।
मदनमूर्तिशयः शयसंग्रहे मृगदृशामशनिः शनिराहुवत् ॥ १ ॥

सं०—मृगदृशां (स्त्रीणां) शयसंग्रहे (पाणिग्रहणे) अरिपराक्रमलाभविनाशगः (षष्ठतृतीयैकादशाष्टमस्थानस्थः) रविः अविश्रमसौख्य-सुतार्थदः (अनायास-सुख-पुत्रधनप्रदः) स्यात्। तथा—मदनमूर्तिशयः (सप्तम-लग्नयोर्गतः) अशनिः (वज्रमिव, घातकः) स्यात्। किंवत्? शनिराहुवत् (शनिराहू यद्वदेषु स्थानेषु तद्वदित्यर्थः)। अर्थात् शनिराह्वो-रपि रवितुल्यमेव फलं स्यात्, केतुफलमपि राहुवज्ज्ञेयम् ॥ १ ॥

भा०—स्त्रियों के पाणिग्रहण समय में लग्न से ६, ३, ११, ८ इन स्थनों में रवि हो तो अनायास सुख, पुत्र और धनदायक होता है । तथा सप्तमस्थान वा लग्न में रवि हो तो वज्र के समान शुभफल का नाशक होता है । जैसे शनि राहु और केतु । अर्थात् शनि राहु केतु भी इन स्थानों में रवि के समान ही हैं ॥

त्रिधनलाभसुखेषु शुभः शशी निधनमूर्तिरिपुष्वतिगर्हितः ।
अशुभशुक्रसखः स खनत्यसून् दिनकरोनकरो न करोति शम् ॥

सं० त्रिधनलाभसुखेषु 'स्थितः' शशी शुभः स्यात् । निधनमूर्तिरिपुषु (अष्टम-लग्न-षष्ठेषु) स शशी अतिगर्हितः (अत्यन्तदुष्टः) स्यात् । शेषस्थानेषु सामान्यगर्हित.' इत्यर्थात् सिद्ध्यति । तथा स (चन्द्रः) अशुभशुक्रसखः (अशुभ-शुक्राभ्यां सहितः) असून् प्राणान् खनति (नाशयति) । तथा दिनकरोनकरः (दिनकरेण उनाः करा यस्य सः सूर्येण सहास्तमितः) शं सुखं न करोति ॥ २ ॥

भा०—चन्द्रमा विवाहलग्न से ३, २, ११, ४ इन स्थानों में शुभप्रद है । और ८, १, ६ इन स्थानों में अत्यन्त अशुभ है । अशुभग्रह वा शुक्र से युक्त चन्द्रमा हो तो प्राणनाशक होता है, तथा सूर्य के साथ अस्त हो तो भी शुभफल नहीं देता है ॥ २ ॥

अवनिजस्त्रिभवारिषु वृद्धये मृतिकरो मृतिमूर्तिमदाश्रितः ।
इह नभोयुजि जीवदृशं विना च्युतनया तनयामिषभुग्वधूः ॥ ३ ॥

सं०—अवनिजः (मङ्गलः) त्रिभवारिषु वृद्धये भवति, तथा—मृतिमूर्तिमदाश्रितः मृतिकरो भवति । इह (अस्मिन् मङ्गले) नभोयुजि (दशमस्थानस्थे) सति जीवदृशं (गुरुदृष्टिं) विना वधूः (स्त्री) च्युतनया (नीतिरहिता) तनयामिषभुक् (सन्तानघातिनी भवतीत्यर्थः) जीवदृष्टिश्चेत् तदा शुभफलं स्यादित्यर्थात् सिद्ध्यति ॥ ३)

भा०—मङ्गल विवाहलग्न से ३, ११, ६ में वृद्धिकारक होता है । और ८, १, ७ में मरणकारक होता है । यदि १० स्थान में हो और उस पर गुरु की दृष्टि न हो तो वह स्त्री अनीति करने वाली और अपने सन्तान को नाश करनेवाली होती है । यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो शुभफल समझना ॥ ३ ॥

व्ययगृहं विरहय्य हिमांशुजः सकलवेश्मसु वेश्मसुतार्थदः ।
स नियतं विदधाति वधूवरं यमकरे मकरेङ्गितमृत्युगः ॥ ४ ॥

सं०—हिमांशुजः (बुधः) व्ययगृहं विरह्य्य (त्यक्त्वा) सकल-वेश्मसु वेश्मसुतार्थदः स्यात्। स (बुधः) मकरेङ्कित-मृत्युगः (सप्तमाष्टमस्थानस्थितः) वधूवरं नियतं यमकरे विदधाति (मृत्युं प्रापयतीत्यर्थः)।

भा०—बुध विवाहलग्न से १२ को छोड़कर शेष (१, २, ३, ४, ५, ६, ९, १०, ११) स्थानों में, गृह, पुत्र और धन दायक होता है। तथा ७।८ स्थानों में हो तो वर और कन्या को यमराज के हाथ में पहुँचा देता है, ॥ ४ ॥

गुरुरनन्त्यमदेषु मुदं श्रियं सृजति कालगृहे गृहभङ्गदः।
अशुभकृन्मकरेपि करग्रहे न मृगराजगतो जगतो हितः॥ ५ ॥

सं०—गुरुः विवाहे अनन्त्यमदेषु (द्वादश-सप्तमरहितेषु) स्थानेषु स्थितः मुदं (हर्षं) श्रियं (सम्पत्तिं) च सृजति करोति। कालगृहे (अष्टमस्थाने) स्थितः गृहभङ्गदः (गृहं भार्या, तद्विनाशको भवतीत्यर्थः)। मकरेऽपि 'स्थितो गुरुः' अशुभकृत् स्यात्। मृगराजगतः (सिंहस्थितः) गुरुः जगतः (संसारस्य) हितो न भवति॥ ५ ॥

भा०—बृहस्पति विवाह लग्न से १, २, ३, ४, ५, ६, ९, १०, ११ इन स्थानों में आनन्द और सम्पत्ति दायक होता है। अष्टम स्थान में स्त्री का नाशकारक होता है। तथा मकरस्थ गुरु अशुभ होता है। और सिंहस्थ गुरु संसार का हितकारक नहीं होता है॥ ५ ॥

सहसपत्ननिमीलनमन्मथे प्रथमदेवगुरुर्गुरुभीतिकृत्।
वहति शेषगृहेषु महोत्सवं व्ययगतः समतां स मतान्तरात्॥ ६ ॥

सं०—प्रथमदेवगुरुः (शुक्रः) सहसपत्ननिमीलनमन्मथे*स्थितः गुरुभितिकृत् (महाभयकारकः) स्यात्। शेषगृहेषु महोत्सवं वहति ददाति। मतान्तरात् व्ययगतः (द्वादशस्थः) स (शुक्रः) समतां वहति (शुभाशुभं न ददातीत्यर्थः)॥ ६ ॥

भा०—शुक्र विवाह लग्न से ३, ६, ८, ७ इन स्थानों में महा भयकारक होता है। शेष स्थानो में अतिशय मङ्गलकारक है। तथा मतान्तर (अन्याचार्यों के मत) से १२ स्थान में सम हो जाता है (अर्थात् शुभ अशुभ कुछ भी नहीं देता हैं)॥ ६ ॥

* नामैकदेशग्रहणेन नामग्रहणात्—'सहे'ति सहजं तृतीयं स्थानम्॥

अथ दुरुधरा (कर्तरी) दोषं जामित्रदोषं च कथयति —

खलकृता तनुरोहिणिमित्रयोर्दुरधरा विधुरां कुरुते वधूम् ।
श्रुतिशरांशमितं स्मरभे तयोर्ग्रहमपुण्यमपुण्यमिव त्यजेत् ॥ ७ ॥

सं०—तनुरोहिणिमित्रयोः (लग्नचन्द्रयोः) खलकृता पापग्रहजनिता दुरधरा 'कर्तरी'* वधूं विधुरां (दुःखिनीं) कुरुते । तयोः (लग्नचन्द्रयोः) स्मरभे (सप्तमे) श्रुतिशरांशं चतुःपञ्चाशन्नवांशं इतं (प्राप्तं) अपुण्यं (पापग्रहं) अपुण्यं (पापं) इव त्यजेत् ॥ ७ ॥

भा०—विवाहकालिक लग्न और चन्द्रमा में पापसम्बन्धी दुरधरा (कर्तरी योग) हो तो स्त्री दुःखिभागिनी (पतिरहिता) होती है । तथा लग्न वा चन्द्रमा से सप्तम में ५४ वाँ नवांश में स्थित पापग्रह को पाप के समान ही त्याग कर देना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ गुरुशुक्रयोर्बाल्यादिदोषं कथयति—

क्षिपति सप्त दिनान्युदयास्तयोः सुरगुरुश्च भृगुश्च गतैष्ययोः ।
इह युगेपि युगस्य करग्रहः स्फुटममङ्गलदो गलदोजसि ॥ ८ ॥

सं०—सुरगुरुः, भृगुश्च गतैष्ययोः उदयास्तयोः (उदये गते, अस्ते एष्ये सतीत्यर्थः) सप्तदिनानि क्षिपति (शुभकार्यं विनाशयतीत्यर्थः) तथा इहास्मिन् युगे (गुरु-शुक्रद्वये) गलदोजसि (निर्बले) अपि युगस्य (वधूवरद्वयस्य) करग्रहः (विवाहः) स्फुटं अमङ्गलदो भवति ॥ ८ ॥

भा०—गुरु और शुक्र उदय से पीछे और अस्त होने से पूर्व ७ । ७ दिन शुभकार्य के विनाशकारक होते हैं । अर्थात् ७ दिन बाल्य और ७ दिन वृद्ध रहते हैं, उसमें विवाहादि शुभकार्य त्याज्य है । तथा ये (गुरु, शुक्र) यदि निर्बल हों तब भी वरवधू का विवाह अत्यन्त अशुभप्रद होता है ॥ ८ ॥

अथात्र विशेषं कथयति—

शिशुजरत्वमहान्युदयास्तयोर्दश चतुर्दश चाङ्गिरसः स्फुटम् ।
उशनसो दश पञ्च च पश्चिमे गतिवशात्त्रिदशाहमपश्चिमे ॥ ९ ॥

सं०—अङ्गिरसः (गुरोः) उदयास्तयोः दश चतुर्दश अहानि (दिनानि) 'क्रमेण' स्फुटं शिशुजरत्वं (बाल्य-वृद्धत्वं) स्यात् । उशनसः

* द्वितीय-द्वादशयोर्ग्रहस्थित्या दुरधरा भवति ॥

(शुक्रस्य) गतिवशात् पश्चिमे दश-पञ्चदिनानि, अपश्चिमे (पूर्वस्मिन्) त्रिदशाहं 'क्रमेण' उदयास्तयोः शिशुजरत्वं स्यात् ॥ ९ ॥

भा०—बृहस्पति के उदय से बाद १० दिन बाल्य और अस्त से पहिले १४ दिन वृद्धत्व रहता है। एवं गति वश से शुक्र के पश्चिमदिशा के उदयास्त में क्रम से १०, और ५ दिन तथा पूर्वदिशा के उदयास्त में क्रम से ३ और १० दिन स्पष्ट बाल्य और वार्धक्य रहता है ॥ ९ ॥

ग्रहबलेषु केषां बलानामावश्यकतेत्याह—

द्युमणिजीवलवोदयशासिनामुडुपतेरिति पञ्चबलीं विना।
परिणमन्ति फलानि चलभ्रुवां फलविरिञ्चि विरिञ्चिकृतान्यपि ॥

सं०—द्युमणि-जीव-लवोदयशासिनां (रवि-गुरु-नवांशेश-लग्नेशानां) उडुपतेः (चन्द्रस्य च) इति पञ्चबलीं विना चलभ्रुवां (स्त्रीणां) विरिञ्चिकृतानि (ब्रह्मलिखितानि) अपि फलानि फलविरिञ्चि (शुभ-रहितानि) परिणमन्ति ॥ १० ॥

भा०—रवि, गुरु, नवांशपति, लग्नपति, और चन्द्रमा इन पांचों के बल विना, ब्रह्मा का लिखा हुआ भी स्त्रियों का फल शुभरहित हो जाता है। इसलिये इन पाँचों के बल से युक्त विवाहलग्न श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

इन्द्रमतेन द्वादशस्थबुधगुरुशुक्राणां फलं कथयति—

व्ययगृहं बुधभार्गवजीवयुग्यदि न तत्कुलमित्रजनेष्वपि।
कृपणता नरनीरजनेत्रयोरिति न शक्रमते क्रमते मतिः ॥११॥

सं०—"व्ययगृहं द्वादशस्थानं यदि बुधभार्गवजीवयुक् न भवेत् तदा नर-नीरजनेत्रयोः (वरकन्ययोः) तत्कुलमित्रजनेषु (तयोर्वधूवरयोः कुलेषु मित्रजनेषु च) कृपणता स्यात्" इति शक्रमते 'इन्द्रवचने' मतिः (अस्माकं बुद्धिः) न क्रमते (न चलतीत्यर्थः) ॥११॥

भा०—विवाहलग्न से १२ स्थान यदि बुध, गुरु वा शुक्र इनमें से किसी एक से युक्त न हो तो—वर और कन्या तथा उसके कुल (पुत्र आदि) तथा मित्रों (सम्बन्धियों) में कृपणता होती है" इस प्रकार इन्द्र के वचन में हम लोगों की बुद्धि नहीं चलती है। यथा इन्द्रविवाहपटल में—

"बुधभार्गवजीवनामेकोऽपि यदि न व्यये।
तदौदार्यं न दम्पत्योः पुत्रपित्रतिथिष्वपि ॥" इति ॥११॥

अथ चन्द्रबलाध्यायः ।

तत्रादावन्येषां मतं दूषयति—

कन्यकावितरणाय पूरुषः पात्रमात्रमिति नैन्दवम्बलम् ।
केचिदस्य वितरन्ति कोविदाः कोविदां किल करोतु तन्मनः ॥ १ ॥

सं०—कन्यकावितरणाय (कन्यादानाय) पूरुषः (वरः) 'पात्रमात्रम्' इत्यस्मात् केचित् कोविदाः (पण्डिताः) अस्य वरस्य ऐन्दवं बलं (चन्द्रबलं) न वितरन्ति (न ददति = न विचारयन्तीत्यर्थः) । तन्मनः (तेषां कोविदानां मनः) कोविदां करोतु ? (को जानातु ?) ॥ १ ॥

भा०—कन्यादान के लिये वर पात्रमात्र है' इस अभिप्रायसे कितने आचार्य वरका चन्द्रबल नहीं देते हैं। परञ्च इसप्रकार उनका मन कौन समझ सकता है ?

अथ दोषं कथयति—

ईदृशं यदि ततः प्रतिग्रहग्राहिणोऽस्य किमभिप्रपञ्चितैः ।
सांशनाडिगणयोनिशुद्धिभिर्जन्मलग्नभवनव्ययाष्टगैः ॥ २ ॥

सं०—"पात्रमात्रत्वात् वरस्य चन्द्रबलं न देयम्" यदि ईदृशं तदा प्रतिग्रहग्राहिणः अस्य (वरस्य) सांशनाडिगणयोनिशुद्धिभिः, तथा जन्मलग्नभवनव्ययाष्टगैरित्यादिभिः अभिप्रपञ्चितैः किं ? । यदि 'अंशनाडिगणादीनां शुद्धिर्विलोक्यते तदा चन्द्रबलमपि विचार्यमेव, चेत्प्रतिग्राहित्वात् चन्द्रबलं न विचार्यं तर्हि योनिनाड्यादीनां शुद्धिरपि न विचार्येत्यर्थः ।

भा०—यदि ऐसा ही है कि—"प्रतिग्राही होने से पात्र मात्र समझ कर वर का चन्द्रबल नहीं देखा जाय" तो फिर—अंश, नाडी, गण, योनि आदि की शुद्धि और जन्मलग्न के अष्टम द्वादश आदि शुद्धि इत्यादि प्रपञ्चों से क्या प्रयोजन ? अर्थात् सब कुछ विचारते हैं तो चन्द्रबल भी देखना ही चाहिये ॥ २ ॥

लाग्निको नवलवः पुमन्तकृत् स्वामिना यदि न युक्तवीक्षितः ।
सङ्गमं दिशति दीर्घनिद्रया पत्युरिन्दुतनुकामगो ग्रहः ॥ ३ ॥

सं०—लाग्निको नवलवः (लग्नगतो नवांशः) यदि स्वामिना युक्तवीक्षितः न भवेत् तदा पुमन्तकृत् (वरनाशकरो) भवति । इन्दुतनुकामगः (चन्द्रलग्नाभ्यां सप्तमस्थः) ग्रहः पत्युः दीर्घनिद्रया (मृत्युना) सङ्गमं दिशति (ददाति) ॥ ३ ॥

भा०—विवाह लग्नगत नवांश यदि अपने स्वामी से युक्त दृष्ट न हो तो वर का नाशकारक होता है। तथा चन्द्रमा और लग्न से सप्तम स्थान स्थित ग्रह भी वर को मृत्यु के साथ सङ्गम कराता है ॥ ३ ॥

चन्द्रमस्युपचयात्परिच्युते चारुगोचरचरैः परैरपि ।
कर्तुरायतिशुभं सभंगुरं निर्दिशन्ति सितशौनकादयः ॥ ४ ॥
एवमादिफलवादिनो नृणामैन्दवं बलमुशन्ति किं न ते ।
भानुरप्युपचये नृजन्मतो यन्मतोक्तिषु तदिष्टमेव नः ॥ ५ ॥

सं०—चन्द्रमसि उपचयात् परिच्युते (क्षीणे सतीत्यर्थः) परैः (भौमादिग्रहैः) चारुगोचरचरैः (शुभस्थानस्थितैः)अपि कर्तुः (वरस्य) आयतिशुभं (भविष्यशुभफलं) सभङ्गुरं (नश्वरं) इति सितशौनकादयः निर्दिशन्ति कथयन्ति। एवमादिफलवादिनः (इत्याद्युपरोक्तफलवक्तारो ये जनाः सन्ति) ते नृणां (पुरुषांणां) ऐन्दवं बलं (चान्द्रं बलं) किं न उशन्ति ? किं नेच्छन्ति ? ये चन्द्रादुक्तफलानि स्वीकुर्वन्ति ते चन्द्रबलमपि स्वीकुर्वन्त्वित्यर्थः। तथा—यन्मतोक्तिषु नृजन्मतः पुरुषजन्मराशित उपचयेषु स्थितो भानुः शुभः, तत् नः (अस्माकमपि) इष्टमेव ॥४॥५॥

भा०—'चन्द्रमा के क्षीण रहने पर मंगलादि ग्रहों के उत्तम स्थान में होने से भी पुरुष का भविष्य फल नाशवान् होता है" ऐसा सित शौनकादिक आचार्यों ने कहा है। इत्यादि चन्द्रमा से उपरोक्त फल को जो मानते वे वर का चन्द्रबल भी क्यों नहीं स्वीकार करते हैं ? अर्थात् उनको चन्द्रबल मानना ही चाहिये। और जिनके मत में पुरुष की जन्मराशि से उपचय स्थान में सूर्य शुभ हैं वह तो हमारा भी इष्ट ही है ॥४॥५॥

अथान्यप्रकारेणापि दोषं कथयति—

न त्रिवर्गपतिना नरेण चेत् कन्यया शशिबलं समाप्यते ।
दीयते यदिह गोमहीमहिष्यादि तर्हि दिश तस्य तद्बलम् ॥ ६ ॥

सं०—त्रिवर्गपतिना (धर्मार्थकामस्वामिना अपि) नरेण शशिबलं (चन्द्रबलं) न समाप्यते, कन्ययैव (यस्या दानं भवति तयैव) शशिबलं समाप्यते चेत्, तदा गोमही-महिष्यादि यद् वस्तु दीयते 'विवाहकाले

वराय समर्प्यते' तस्य (गोमहिष्यादेः सर्वस्य) तद्धुलं चन्द्रबलं दिश प्रयच्छ । इत्यतिप्रसङ्गदोषो दर्शितः अतो वरस्यापि चन्द्रबलं ग्राह्यम् ॥६॥

भा०—धर्म अर्थ काम तीनों के मालिक भी पुरुष चन्द्रबल नहीं पाता है, और कन्या (जिसका दान किया जाता है वही) यदि चन्द्रबल पाती है तो फिर विवाह समय में गाय, पृथ्वी, भैंस इत्यादि जो कुछ दिये जाते हैं उनका भी चन्द्रबल देखो । अर्थात् इस प्रकार अतिप्रसङ्ग दोष होता है अतः वर का भी चन्द्रबल देखना चाहिये ॥ ६ ॥

इन्दुरिन्दुवदनानुगं बलं यच्छतीह युवतिग्रहो यतः ।
सन्नृणामपि कथं षडष्टगः खण्डयत्ययमसून् प्रसूतिषु ॥ ७ ॥

सं०—इन्दुः (चन्द्रः) इन्दुवदनानुगं (युवत्यनुसारं) बलं यच्छति, यतः स युवतिग्रहः (स्त्रीग्रहः), इति चेत्, तदा अयं (चन्द्रः) प्रसूतिषु जन्मसमयेषु षडष्टगः सन्नृणां (पुरुषाणां) असून् (प्राणान्) कथं खण्डयति ? (नाशयति ?)। अतः पुरुषस्यापि चन्द्रबलं ग्राह्यमेवेति ॥७॥

भा०—यदि ऐसा कहो कि—चन्द्रमा स्त्री ग्रह है इसलिये स्त्री के अनुकूल ही बल देता है ? तो फिर जन्म समय में षष्ठ, अष्टम स्थानस्थ चन्द्रमा पुरुष का प्राणापहारक क्यों होता है ? अतः वर का भी चन्द्रबल देखना ही चाहिये ॥७॥

होरयापि हिमरश्मिराहृतः पुंस्फलेषु सुनफानफादिषु ।
अत्रिराह बहुलेपि तारकां तारकापतिबले बलीयसीम् ॥ ८ ॥

सं०—होरया (जातकशास्त्रेण) अपि पुंस्फलेषु (पुरुषफलेषु) सुनफाऽनफादिषु 'योगेषु' हिमरश्मिश्चन्द्रः आहृतः । अतश्चन्द्रबलं ग्राह्यमेवेत्यर्थः । तथा अत्रिः 'मुनिः' बहुले (कृष्णपक्षे) अपि तारकापतिबले सत्येव तारकां बलीयसीं आह । सत्येव चन्द्रबले तारा बलवती भवत्यतश्चन्द्रबलं वरस्यापि ग्राह्यमित्यर्थः ॥ ८ ॥

भा०—जातक शास्त्र ने भी पुरुषों के फल में सुनफा अनफा आदि योगों में चन्द्रमा को ग्रहण किया है । अर्थात् चन्द्रमा से ही योगफल कहा है । तथा अत्रिमुनि कृष्णपक्ष में भी चन्द्रबल (शुभस्थानस्थित) रहने पर ही तारा को बलवती कहे हैं । अतः वर का भी चन्द्रबल ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

पुनरन्यमतमुपन्यस्य दूषयति—

प्रोषिते विकलवर्ष्मणि प्रिये तोलितः स्त्रियमियेष कार्यिणीम् ।

अस्तु किन्तु न पतिप्रतीपतां साऽन्यथा घटयितुं पटीयसी ॥ ६ ॥

सं०—प्रिये स्वामिनि प्रोषिते (देशान्तरं गते) सति, विकलवर्मणि (रुग्णशरीरे सति) वा तोलिलिः 'मुनिः' स्त्रियं कार्यिणीं (कार्याधिकारिणीं) इयेष ऐच्छत्। अस्तु (सा कार्यकारिणी भवतु) किन्तु सा (स्त्री तारा वा) अन्यथा पतिप्रतीपतां (स्वामिवैपरीत्यं) घटयितुं (कर्तुं) न पटीयसी न क्षमा। अतः सत्येव चन्द्रानुकूलत्वे ताराबलं ग्राह्यमिति सिद्ध्यति ॥ ९ ॥

भ०—पति के विदेश जाने पर अथवा रुग्ण होने पर तोलिलि मुनि स्त्री को कार्यकारिणी कहे हैं। अस्तु ऐसा हो सकता है—परन्तु उस हालत में भी स्त्री अपने स्वामी के अभिप्राय से विरुद्ध नहीं कर सकती है। अतः चन्द्रमा के क्षीण रहने पर भी अनुकूलत्व देखना चाहिये केवल ताराका बल अकार्यक ही है ॥६॥

कृष्णपक्षेऽपि चन्द्रो न विनश्यतीत्याह—

क्रौर्यमेति बहुले स केवलं नैव नश्यति तमाममां वसन्।
नास्ति चैष यदि तत्र तत्कथं तत्कृता जनिषु रिष्टरौद्रता ॥१०॥

सं०—बहुले कृष्णपक्षे स चन्द्रः क्रौर्यं (क्रूरत्वं) एति गच्छति। तथा अमांवसन्नपि नैव नश्यति तमाम् (अतिशयेन नैव नश्यति)। यदि च एष (चन्द्रः) तत्र (तस्याममायां) नास्ति (अतिशयेन नष्टः) तत्तदा जनिषु जन्मकालेषु तत्कृता रिष्टरौद्रता रिष्टक्रूरता कथं स्यात्?। अतोऽमायां चन्द्रो न नश्यति, किञ्च प्रकाशविहीनो भवति ॥१०॥

भा०—कृष्णपक्ष में चन्द्रमा में केवल क्रूरता होती है। अमावस्या में सूर्य के साथ अस्त होने पर वह सर्वथा नष्ट नहीं हो जाता है। यदि कहो कि—अमावस्या में चन्द्रमा नहीं रहता है। तो फिर अमावस्या में भी जन्मकालिक-चन्द्रजन्य अरिष्ट की क्रूरता क्यों कही जाती है?। अतः अमावास्या में चन्द्रमा नष्ट नहीं हो जाते। सूर्य के साथ रहने से तेजविहीन मात्र हो जाते हैं ॥१०॥

ताराबले सिद्धान्तं कथयति –

पार्श्वगे निजपतौ कुटुम्बिनी दुर्बलेऽपि तदभीष्टकार्यकृत्।
तारकाऽपि शशिनोऽनुकूलतासम्भवे भवति पक्षपातिनी ॥११॥

सं०—दुर्बलेऽपि निजपतौ पार्श्वगे (निकटवर्तिनि) सति कुटुम्बिनी (तत्स्त्री) तदभीष्टकार्यकृत् (तस्य स्वभर्तुरभीष्टकार्यकारिणी) भवति।

तथैव तारकापि शशिनश्चन्द्रस्यानुकूलताऽसम्भवे पक्षपातिनी भवति । अतः कृष्णपक्षेऽपि चन्द्रानुकूलत्वे एव ताराबलं ग्राह्यमिति सिद्धम् ॥११॥

भा०—दुर्बल भी अपना पति समीप में रहता है तो स्त्री उसके इच्छानुसार ही कार्य करती है । इसी प्रकार तारा भी चन्द्रमा के अनुकूलता अप्राप्त होने पर चन्द्रमा ही की पक्षपातिनी होती है । अर्थात् कृष्णपक्ष में भी चन्द्रमा प्रतिकूल रहता है तो तारा भी अशुभ फल को ही देती है । और चन्द्रमा के शुभ स्थान स्थित होने पर शुभ फल देती है । इससे सिद्ध हुआ कि कृष्णपक्ष में भी चन्द्रमा को अनुकूल स्थान में ही रहना चाहिये ॥११॥

अथ राहुसत्ताध्यायः ।

तत्रादौ वराहमिहिरमतं दूषयति—

यद्वराहमिहिरो न राहुरित्याह ताण्डवितबाहुरुच्चकैः ।
संहितास्मृतिसहायिनी वहत्यत्र तत्पथविमाथिनी श्रुतिः ॥ १ ॥

सं०—'राहुः न' इति उच्चैस् ताण्डवितबाहुः (नर्तितभुजः सन्) वराहमिहिरो यदाह (कथितवान्) अत्र तत्पथविमाथिनी (तन्मार्गभङ्ग-कारिणी) संहितास्मृतिसहायिनी (संहितास्मृति-सहिता) श्रुतिः (वेदः) वहति (विद्यते इत्यर्थः) ॥ १ ॥

भा०—भुजा को नचाता हुआ वराहमिहिर ने—"राहु नहीं है" ऐसा जो कहा है, इस विषय में उस (वराहमिहिर) के मार्ग को खण्डन करनेवाली संहिता और स्मृति सहित श्रुति विद्यमान है ॥ १ ॥

यथा-संहिता—"अशनिभयसंप्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहुः ।"

स्मृतिः—"सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः ।
सर्वं भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते निशाकरे ॥"

श्रुतिः—"स्वर्भानुर्हतो आसुरिः सूर्यं तमसा विव्याध ।" इत्यादि ॥२॥

अथ राहुसत्तायां प्रमाणान्तरं कथयति—

नैर्ऋती दिगियमस्य दिक्पतेर्ध्यानदानवलिभिः फलाप्तये ।
वेश्म चास्य शशभृद्विमण्डलक्रान्तिमण्डलमिथश्चतुष्पथम् ॥ २ ॥

सं०—दिक्पतेरस्य राहोः इयं नैर्ऋती दिक् वर्तते, राहुरेव नैर्ऋतीदिक्पतिरित्यर्थः। तथाऽसौ राहुः ध्यान-दानबलिभिः फलाप्तये भवति। तथा चास्य राहोः शशभृद्विमण्डल-क्रान्तिमण्डलमिथश्चतुष्पथं (चन्द्रविमण्डल-क्रान्तिमण्डलसम्पातरूपं) वेश्म गृहमस्ति। अतो राहुरस्त्येवेति।

वि०—अत्र—"राहुर्नास्ती"ति वराहमिहिरमतमारोप्य व्यर्थमेव खण्ड्यते ग्रन्थकारेण। वस्तुतस्तु—"राहुर्नास्तीति"न वराहमिहिरस्य मतं। यतस्तेन स्वल्पजातके—"प्राच्यादीशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः" इति राहोर्दिक्पतित्वं प्रतिपाद्य तत्सत्तैव प्रतिपादितेति विवेचनीयं निष्पक्षपातहृदयैर्विद्वद्भिः॥ २॥

भा०—दिक्पति राहु की ही यह नैऋति दिशा है। तथा ध्यान, दान, और पूजा से भी राहु फलप्रद होता है। और चन्द्रमा का विमण्डल तथा क्रान्तिमण्डल का परस्पर सम्पातरूप चतुष्पथ इस राहु का स्थान है। अतः राहु की सत्ता विद्यमान है॥ २॥

वि०—वराहमिहिर ने तो—"प्रागाद्या रविशुक्रलोहिततमः" इत्यादि श्लोकों से बृहज्जातक में राहु की सत्ता ही सिद्ध की है। फिर भी यहाँ ग्रन्थकार—"राहु नहीं है" ऐसा वराहमिहिर का मत कल्पनाकर व्यर्थ ही खण्डन कर रहे हैं।

'ग्रहणे राहुश्छादको नास्तो'ति कस्य चिन्मतं खण्डयति—

सोन्धकारचरतां वहन्महीच्छायया विशति सोममण्डलम्।
दीपितापरदलेन्दुमण्डलच्छायया सह च सूर्यमण्डलम्॥ ३॥

सं०—स राहुः अन्धकारचरतां वहन् (अन्धकारे चरन्) महीच्छायया सह-सोममण्डलं चन्द्रविम्बं विशति। तथा च दीपितापरदलेन्दुमण्डलच्छायया (दीपितं अपरदलं = ऊर्ध्वस्थदलं यस्य तस्येन्दुमण्डलस्य च्छायया) सह सूर्यमण्डलं च विशति सूर्यविम्बं ग्रसतीत्यर्थः॥ ३॥

भा०—वह राहु अन्धकार में रहता हुआ पृथ्वी की छाया (भूभा) के साथ चन्द्रमण्डल में प्रवेश करता है। तथा प्रकाशित है ऊपर का आधा भाग जिसका ऐसे चन्द्रबिम्ब की छाया के साथ सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है। अतः ग्रहण में भी राहु छादक और कारण सिद्ध होता है॥ ३॥

वृत्तयोः सम्पातः कथं राहुरित्याह—

वृत्तयोः पतनमेव पात इत्याहुरत्र किल राहुरीक्षते।

आपतन्तममृतद्युतिं सुधा-स्नानदानहवनांशलालसः ॥ ४ ॥

सं०—वृत्तयोः (क्रान्तिमण्डलविमण्डलयोः) पतनमेव पातः, इति 'गोलविज्ञाः' आहुः । अत्र (सम्पाते) सुधा-स्नान-दान-हवनांशलालसः (सुधायाश्चन्द्रबिम्बगतामृतस्य स्नानदानहवनांशस्य च लालसा यस्य स तथोक्तः सन्) राहुः आपतन्तं आगच्छन्तं अमृतद्युतिं (सुधांशुं) ईक्षते (ग्रहीतुमवलोकयतीत्यर्थः) ॥ ४ ॥

भा०—"चन्द्रविमण्डल (चन्द्रमार्ग) और क्रान्तिमण्डल" (सूर्यमार्ग) इन दोनों वृत्तका योग ही पात कहलाता है, इस प्रकार गोलज्ञाताओं ने कहा है। उसी में सर्वदा स्थित राहु अमृत, स्नान, दान, और हवन के अंश की लालसा से अपने समीप में आते हुए चन्द्रमा को देखता रहता है ॥ ४ ॥

वि०—जब पृथ्वी की छाया उक्त पात के स्थान में जाती है उस समय चन्द्रमा भी यदि उसके समीप पहुँचते हैं तो राहु चन्द्रमा को ग्रहण करता है। उस समय लोग राहु के निमित्त भी दान और हवन करते हैं। उस अंश को पाकर और चन्द्रबिम्ब में जो अमृत है उसका पान करके राहु सन्तुष्ट होता है ॥

एवं चेत् तदा प्रतिमासं ग्रहणं किं न भवतीत्याह—

सैंहि-केयगृहतामुपेयुषोर्दूरगो वियति वृत्तपातयोः ।
ग्रासमेति न रविर्न चन्द्रमा गृह्यते स खलु पार्श्वगस्तयोः ॥ ५ ॥

सं०—सैंहिकेयगृहतां (राहुभवनत्वं) उपेयुषोः (प्राप्तवतोः) वृत्तपातयोः वियत्याकाशे दूरगो दूरस्थितो रविः, चन्द्रमाश्च ग्रासं नैति (न प्राप्नोति)। तथा तयोः (पातयोः) पार्श्वगः समीपस्थः स रविः, चन्द्रमाश्च खलु निश्चयेन गृह्यते 'तेन राहुणेति' शेषः ॥ ५ ॥

भा०—राहु के गृहस्वरूप क्रान्तिवृत्त और चन्द्रविमण्डल के दोनों सम्पात से जब आकाश में रवि और चन्द्रमा दूर रहते हैं तब राहु से ग्रस्त नहीं होते हैं। जब उक्त वृत्तपात के शमीप में पड़ते हैं तब राहु से ग्रस्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ जातकसंहिताभ्यां राहुसत्तां कथयति—

राशिवृत्तवसतिः स सूर्यवद्भावगोचरफलैर्न हीयते ।
रिष्टभङ्गजननैकनायको हौरिकैरपि स कैर्न कीर्त्यते ॥ ६ ॥

सं०—राशिवृत्तवसतिः (राशिवृत्ते वसतिर्वासो यस्य) स राहुः सूर्यवद्भावगोचरफलैः न हीयते (सदा क्रान्तिवृत्ते स्थितत्वात् राहुरपि

सूर्यतुल्यमेव गोचरफलादिकं ददातीति संहितायामुक्तमतो राहोःसत्ता-सिद्ध्यतीत्यर्थः)। एवमेव रिष्टभङ्गजननैकनायकः (रिष्टस्य भङ्गो नाशः, जननं उत्पत्तिः, तयोरेकनायकःकर्ता) स राहुः कैः हौरिकैः (जातकशास्त्रज्ञैः) न कीर्त्यते ? अपि तु सर्वैरेव कीर्त्यते। अतो राहोर्ग्रहत्वं सिद्ध्यति ॥६॥

भा०—राशि वृत्त में रहने के कारण सूर्य के समान ही राहु भी भाव और गोचर फल देता है। जो संहिता में प्रसिद्ध है। तथा कौन से जातक शास्त्रकारों ने अरिष्ट के भंग और उत्पत्ति कारक राहु को नहीं कहा है ? अर्थात् सब जातक-कारों ने कहा है। अतः राहु की सत्ता सर्वथा सिद्ध होती है ॥ ६ ॥

यथा चन्द्रपातस्य ग्रहत्वं तथा भौमदिपातानां किं नेत्याह—

एष शेषखगपाततुल्यतां नैति चन्द्ररविपर्वगर्वितः।
जातकादिषु यथेन्दुमन्दिरात्किं तथा न फलमन्यराशितः ॥ ७ ॥

सं०—एष (उपरोक्तश्चन्द्रपातः) यतो चन्द्र-रविपर्वगर्वितः (चन्द्रार्कयोर्ग्रहणकारकत्वेन गर्वितः) अतः शेषखगपाततुल्यतां (भौमादि-ग्रहपातसमतां) नैति न प्राप्नोति। चन्द्रपातसमीपे एव ग्रहणं भवति, भौमादिपातसमीपे नेति चन्द्रपातस्यैव ग्रहत्वम् नान्यपातानामित्यर्थः। इत्येव पुनः प्रकारान्तरेण कथयति—जातकादिषु (जातक-संहिता-स्वर-शास्त्रेषु) यथेन्दुमन्दिरात् चन्द्रराशितः फलं 'कथितं' तथाऽन्यराशितः अन्यग्रहराशितः किं न ? इत्यतो यथा चन्द्रराशिवशात् सर्वत्र फलं तथैव तत्पातवशादप्यतश्चन्द्रपातस्यैव ग्रहत्वं। नान्यग्रहपातानामित्यर्थः ॥ ७ ॥

भा०—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण से गर्वित होने के कारण यह चन्द्रपात दूसरे (भौमादि) ग्रहों के पात की तुलना में प्राप्त नहीं है। अर्थात् यह सबसे महान् है। क्योंकि इसी के समीप में ग्रहण होता है। दूसरे पातों के समीप में नहीं। तथा—दूसरी बात यह कि—जातक संहिता आदि में जैसे चन्द्रराशि से फल कहा है उस प्रकार अन्य ग्रहों की राशि से क्यों नहीं है ? । अतः केवल चन्द्रपात में ही ग्रहत्व सिद्ध है ॥ ७ ॥

प्रथमसम्पाते राहुरूपेण द्वितीये स एव केतुरूपेण तिष्ठतीत्याह—

वृत्तपातमपरं स्वपाततो राहुरेति समयात्स्वयंभुवः।
मन्दिरं तदपि तस्य तद्गतस्त्यज्यते जगति दिव्यरिष्टवत् ॥ ८ ॥

सं०—राहुः स्वयंभुवो ब्रह्मणः समयात् (निदेशात्,—"समयः सपथे भाषासम्पदोः कालसंविदोः। क्रियाकारे निदेशे च" इति कोषः) स्वपाततः (प्रथमसम्पाततः) अपरं वृत्तपातं (वृत्तयोर्द्वितीयं सम्पातं) एति गच्छति तत्रापि तिष्ठतीत्यर्थः। तस्य राहोस्तदपि मन्दिरं स्थानम्। तद्गतः तत्रस्थितः स राहुः जगति संसारे दिव्यरिष्टवत् त्यज्यते। द्वितीयपातगतं तं केतुं मत्वा जनास्त्यजन्तीत्यर्थः॥ ८॥

भा०—ब्रह्मा के आदेश से राहु प्रथम सम्पात से वृत्तके द्वितीय सम्पात में जाता है। वह (द्वितीयपात) भी राहु का स्थान है। परञ्च उस पात में स्थित राहु, लोक में दिव्य रिष्ट (केतु) समझ कर त्याग किया जाता है॥ ८॥

वि०—विष्णुपुराणादि में भी प्रसिद्ध है कि विष्णुके सुदर्शन से छिन्न हो कर राहु के दो अवयव हो गये। उनमें शिर का नाम राहु और धर का नाम केतु हुआ उसका उदय होता है तो लोग उसे दिव्य उत्पात कहते हैं॥ ८॥

चन्द्रपातस्य ग्रहत्वं चेत् तदा चन्द्रोच्चस्य किं नेत्याह—

पातवद्गतिवशेन शीतगोरुच्चमस्तु फलदं किलेति चेत्।
अस्तु किन्तु नहि तन्निवेशितं राहुवद् ग्रहपदे विरिञ्चिना॥ ९॥

सं०—शीतगोः (चन्द्रस्य) उच्चमपि गतिवशेन पातवत् फलदं अस्तु, किलेति (एवं) चेत्, तर्हि अस्तु एवं, किन्तु तत् चन्द्रोच्चं विरिञ्चिना (ब्रह्मणा) राहुवद् ग्रहपदे न निवेशितम्। अतस्तस्य ग्रहत्वं नेत्यर्थः॥९॥

भा०—"गतिवश से चन्द्रपात के समान चन्द्रमा का उच्च भी फलप्रद हो" ऐसा अगर कहो, तो सही है, परञ्च क्या करें ब्रह्मा ने राहु के समान उसे (उच्च) को ग्रह के पद में नहीं निवेश किया। इससे उसमें फलदता नहीं है॥ ९॥

पुनः प्रकारान्तरेण कथयति—

किंच गोलगणितानि यन्महीमध्यकेन्द्रमधिकृत्य तेनिरे।
तद्गतः शशिनमीक्षते स्फुटं व्युच्चहेतुमपि पातवर्त्मनि॥१०॥

सं०—किञ्च यन्महीमध्यकेन्द्रं अधिकृत्य (भूमेर्मध्यं खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्यात्' इत्यादिना—भूमध्यमेव केन्द्रं मत्वा) गोलगणितानि तेनिरे, तद्गतः तत्रस्थितो जनः पातवर्त्मनि पातमार्गे व्युच्चहेतुं (उच्चहेतुरहितं) अपि स्फुटं शशिनं (चन्द्रं) ईक्षते पश्यति। अर्थात यत्र स्फुटचन्द्रो दृश्यते तस्मिन्नेव कक्षावलये चन्द्रपातोऽपि, यत उक्तम्—

"चन्द्रस्य कक्षावलये हि पातः" इत्यादि। तदुच्चं च प्रतिवृत्तेऽत एव चन्द्र-पातस्यैव ग्रहत्वं, न च तदुच्चस्येत्यर्थः।

वस्तुतस्तु "व्युच्चहेतुं" इति ग्रन्थकारेण यदुक्तं तत् लोकप्रतारण-मात्रमेव। उच्चं तु स्फुटचन्द्रस्य हेतुरेव। यथोक्तं भगवता श्री सूर्येण स्व-सिद्धान्ते—"अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः। शीघ्रमन्दोच्चपाता-ख्या ग्रहाणां गतिहेतवः।" इत्यलं पल्लवितेन ॥१०॥

भा०—और भी यह है कि—जिस भूमध्य को केन्द्र मान कर गोल गणित किये गये हैं, वहाँ स्थित होकर पात मार्ग में ही स्पष्ट चन्द्रमा देख पड़ता है। जिसमें उच्च हेतु नहीं होता है। अर्थात् जिस वृत्त में स्पष्ट चन्द्रमा रहता है उसीमें उसका पात भी रहता है। उच्च दूसरे वृत्त में रहता है। अतः चन्द्रपात में ही ग्रहत्व उचित है। उच्च में नहीं ॥१०॥

अथात्र सिद्धान्तं कथयति—

अत्र ये न विकलादलार्द्धमप्यह्नि यान्ति फलमस्तु किं ततः।
तावदेव फलगौरवं गतिर्यावतीत्यधिफलः कलानिधिः ॥११॥

सं०—अत्र ये (कुजादीनां पाताः) अह्नि (एकस्मिन् दिने) विकलादलार्धं अपि न यान्ति (न गच्छन्ति) ततः तेभ्यः कुजादिपाते-भ्यः फलं किमस्तु ?। यतो यावती गतिस्तावदेव फलगौरवं स्यात्। अतएव कलानिधिश्चन्द्रः अधिफलः (सर्वेभ्योऽधिकफलः) तथा चोक्तम्—

"एकतो हि ग्रहाः सर्वे एकतो मृगलाञ्छनः।
ततोऽधिकतरश्चन्द्रस्तस्माच्चन्द्रं परीक्षयेत्" इति ॥११॥

भा०—जो कुजादि ग्रहों के पात दिन में विकलार्ध का आधा भी नहीं चलते हैं, उनसे फल क्या हो सकता है ?। क्योंकि जितनी ही गति अधिक होती उतनी ही फल में भी अधिकता होती है। अतः सबसे अधिक गति होने के कारण चन्द्रमा सबसे अधिक फलप्रद है। अर्थात् इसी कारण से चन्द्रपात (राहु) में फलप्रदता सिद्ध है ॥११॥

पात एव राहुरित्याह—

किंच गोलगणितेषु जिष्णुजः सोमरोमकमयादयोऽपि च।
पर्ययेण ननु राहुपातयोर्नामनी विदधुरेव तान्त्रिकाः ॥१२॥

सं०—किञ्च जिष्णुजो ब्रह्मगुप्तः, तथा सोमरोमक-मयादयोऽपि

तान्त्रिकाः शास्त्रकारका गोलगणितेषु पर्ययेणैव राहुपातयोर्नामनी संज्ञे विदधुः 'पात एव राहुरिति' कथितवन्त इत्यर्थः ॥१२॥

भा०—और भी प्रमाण है कि—ब्रह्मगुप्त, सोम, रोमकमुनि, मयासुर, आदि शब्द से वशिष्ठ नारद ब्रह्मा आदि शास्त्रकारों ने राहु और पात ये दोनों नाम पर्य्यायवाचक कहे हैं, अर्थात् पात ही को राहु कहा है ॥१२॥

अथोच्चस्य कल्पनामात्रत्वं कथयति—

अर्कमर्कजकुजार्यतुङ्गतां किं नयन्ति यदि तत्पृथग्भवेत् ।
कल्पना तदियमुच्चमुच्चरन् कोपि रोपितफलं न च श्रुतः ॥१३॥

सं०—यदि तत् (उच्चं) पृथग् भवेत्, तदा अर्कज-कुजार्यतुङ्गतां अर्कं सूर्यं किं नयन्ति ? शनि-कुज-गुरूणामुच्चं सूर्यमेव कथमामनन्ति ? । तत् (तस्मात्) इयं कल्पनाऽस्ति, मन्दफलादिसाधनार्थं उच्चं कल्पनामात्रमेवेत्यर्थः । तथा च रोपितफलं उच्चं उच्चरन् कथयन् कोऽपि जनो न श्रुतः, कोऽप्युच्चफलं न कथितवान् इत्यर्थः ॥१३॥

भा०—अगर फल देने में उच्च पृथक् पृथक् हो तो, शनि, मंगल और गुरु इन तीनों का उच्च सूर्य ही को क्यों मानते ? इसलिये मन्द फलादि साधनार्थ उच्च कल्पना मात्र है । तथा यह भी कि उच्च का फल कहनेवाला कोई आचार्य सुननेमें नहीं आया है । अर्थात् सिद्ध हुआ कि पातमें फलदातृत्व है उच्चमें नहीं ।

राहोर्ग्रहत्वं चेत् तदा तस्य दिनाद्यधिपतित्वं किं नेत्याह—

राहोर्नाहोरात्रवर्षाधिपत्यं सत्यं सर्वव्योमगानामधीशौ ।
यस्य च्छाया पुष्पवन्तौ पिनष्टि क्वास्ते तस्य स्वामिताया विनष्टिः ॥

सं०—राहोः अहोरात्रवर्षाधिपत्यं नास्तीति सत्यम्, परञ्च यस्य राहोः छाया सर्वव्योमगानां (सकलखेटानां) अधीशौ पुष्पवन्तौ रविचन्द्रौ पिनष्टि (चूर्णयति) तस्य राहोः स्वामितायाः आधिपत्यस्य विनष्टिः क्वास्ते ? सर्वत्र तदाधिपत्यमस्त्येवेत्यर्थः ॥१४॥

भा०—यह सत्य है कि—राहु में दिनाधिपत्य, वर्षाधिपत्य आदि नहीं है । परञ्च जिसकी छाया सब ग्रहों के अधीश सूर्य चन्द्र को चूर्ण (ग्रसित) कर देती है, उसका आधिपत्य का विनाश कहाँ हो सकता है । अर्थात् सर्वत्र ही उसका आधिपत्य समझना चाहिये ॥१४॥

अथ राहोर्गतिप्रमाणं कथयति—

प्रतिदिनं खचरः प्रचरन्फलं किमपि यच्छति चारफलो हि सः ।
ग्रहणर्क्षग एव स चेन्न किं चलति किंचिदुपप्लव एव तत् ॥

सं०—खचरः प्रतिदिनं प्रचरन् (गच्छन्) किमपि (शुभमशुभं वा) फलं यच्छति, हि यतः स चारफलः चारेण फलं यस्य स तथोक्तः । अर्थात् यथा यथा ग्रहश्चलति तथा तथा स्थानानुसारं फलमपि प्रयच्छति । स राहुः ग्रहणर्क्षग एव तिष्ठति, चेत् तदा स किं न चलति ? अपि तु चलत्येव, न चेत् तत् तदा उपप्लवः (ग्रहणं) एव किञ्चित् चलति ? ग्रहणनक्षत्रे तु राहुणाऽवश्यमेव भवितव्यम्, अतो ग्रहणचलनमेव राहोरपि चलनं स्यात् । एकं ग्रहणं यस्मिन्नक्षत्रे भवति पुनर्द्वितीयं ग्रहणं तत्पृष्ठनक्षत्रे दृश्यतेऽत एव राहोर्विपरीतगतिसद्भावात् ग्रहत्वं सिद्ध्यति ॥

भा०—ग्रह प्रतिदिन चलता हुआ ही कुछ फल देता है । क्योंकि वह (ग्रह) चारफल कहलाता है । और जिस नक्षत्र में ग्रहण होता है उसी नक्षत्र में राहु भी रहता है तो क्या वह नहीं चलता है ? अवश्य चलता है । यदि नहीं चलता तो कुछ ग्रहण ही चलता है ?

भाव यह है कि एक ग्रहण जिस नक्षत्र में होता है फिर दूसरा ग्रहण उससे पीछे के अन्य नक्षत्र में होता है । तथा जिस नक्षत्र में ग्रहण होता है वहाँ राहु अवश्य रहता है यह पूर्व सिद्ध हो चुका है, इसलिये ग्रहण की गति ही राहु की गति सिद्ध होती है, अतः राहु में ग्रहत्व सिद्ध है ॥१५॥

एवमेव केतुरपि चलतीत्याह—

उदयमेति यदा दिवि तत्परं चरति केतुरपि प्रतिवासरम् ।
भवति न ग्रह एव गतिं विना जगति कर्मविपाकवदावदः ॥१६॥

सं०—यदा दिवि आकाशे तत्परं (तस्य राहोरपरमङ्गं) उदयमेति तदा स केतुरपि प्रतिवासरं चरति (गच्छति) 'इति प्रत्यक्षं दृश्यते' । 'यतः' जगति संसारे गतिं विना कर्मविपाकवदावदः(कर्मफलसूचकः) ग्रह एव न भवति । अतो गतिसद्भावात् केतुरपि ग्रहः फलप्रदश्चेति ॥१६॥

भा०—जब राहु का अपर अङ्ग (केतु) आकाश में उदित होता है, तो वह भी प्रतिदिन चलता है । और बिना गति के शुभाशुभ कर्मफलसूचक ग्रह नहीं होता है । अर्थात् सिद्ध हुआ कि गति होने के कारण केतु भी फलदायक ग्रह है ।

'तमो न ग्रह' इति यन्मतं तद् भोजराजेन खण्डितमित्याह—

परिहरन्त्युपरागपरागतं तम उपप्लव एव स किं ग्रहः ।
इति मणित्थवचांसि विवृण्वता मतमतक्ष्यत भोजमहीभुजा ॥१७॥

सं०—उपरागपरागतं ग्रहणगतं तमो जनाः परिहरन्ति, स किं ग्रहः ? स ग्रहो नेति स उपप्लव एवेति यन्मतं तन् मतं मणित्थवचांसि विवृण्वता (मणित्थवाक्यानां विवरणं कुर्वता) भोजमहीभुजा भोजराजेन अतक्ष्यत (अच्छिद्यत, खण्डितमित्यर्थः) ॥१७॥

भा०—'ग्रहण में प्राप्त अन्धकार तो उत्पात मात्र है जिसे लोग त्याग कर देते हैं, क्या वह ग्रह है ? अर्थात् ग्रह नहीं है' इस प्रकार के मत को मणित्थाचार्य के वाक्यों का विवरण करते हुए भोजराज ने भी खण्डन कर दिया है ॥१७॥

अथाप्यसौ केवलवासनायां नायाति सिद्धिं तदपि प्रियं नः ।
अवासनं किं न सुरद्युरात्रमर्कायनाभ्यां भवतैव भेजे ॥१८॥

सं०—अथापि यद्यपि असौ राहुश्छादक इति केवलवासनायां सिद्धिं नायाति, तदपि नः (अस्माकं) प्रियमेव । किं अवासनं (वासनारहितं) अर्कायनाभ्यां सुरद्युरात्रं भवतैव न भेजे ? (न स्वीकृतम् ?) अपि तु संहिताद्युक्तप्रमाणेन स्वीकृतमेव । तथैव राहोश्छादकत्वमपीत्यर्थः ॥१८॥

भा०—'यद्यपि राहु छादक है' यह केवल वासना से सिद्ध नहीं होता है। नहीं हो, यह तो हमारा इष्ट ही है, क्या वासना से सिद्ध विना देवता का अहो रात्र आप सूर्य के सौम्यायन और याम्यायन से ही नहीं स्वीकार किया है ? अवश्य किया है। अर्थात् जैसे संहिता स्मृति प्रमाणों से—सूर्यके अयन से ही देवताका अहोरात्र मानते है तो उसी प्रमाण से राहु को भी ग्रहण में छादक मानें ॥१८॥

वि०—वासना से नाड़ीवृत्त देवों का क्षितज है, अतः जब मेषादि में सूर्य आते हैं तब देवों के दिन की तथा तुलादि में जाने से रात्रि की प्रवृत्ति होनी चाहिये। परञ्च संहितादि में मकर की सक्रांति (सौम्यायन) से ही दिन, और कर्क की संक्रान्ति (याम्यायन) से ही रात्रि कही गयी है। यह वासना से विरुद्ध भी स्वीकृत है ॥१८॥

अयनाभ्यामेव कथं सुराणां द्युरात्रमित्याह—

सिद्धान्तपक्षस्तु परं दिनार्द्धान्निशा निशार्धात्परतो दिनश्रीः ।
एवं पुराणे गणिते च साम्यमर्कायनाभ्यां सदसत्फलेषु ॥१९॥

सं०—सिद्धान्तपक्षस्तु अयं, यत्—दिनार्धात् परं निशा, निशार्धात् परतो दिनश्रीः (दिनम्) एवं अर्कायनाभ्यां सदसत्फलेषु 'शुभाशुभफलेषु' पुराणे गणिते च साम्यं तुल्यता स्यात्। तथाह भास्कराचार्यः—
"दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्तनाय तत्" ॥१९॥

भा०—सिद्धान्त पक्ष यह है कि—दिनार्ध के बाद (सूर्य के रात्र्युन्मुख होने के कारण) रात्रि, और रात्र्यर्ध के बाद (सूर्य के दिनोन्मुख होने के कारण) दिन माना गया है। इस प्रकार सूर्य के अयन से देवों का अहोरात्र में पुराण और गणित में समता (विरोधपरिहार) है ॥१९॥

एतदेव स्पष्टयति—

कर्कंगतेऽर्के हि सुरापराह्णः फलं पुना रात्रिवदाहुरस्य।
नक्रंगते चापररात्रमेषामेतत्परं वासरवत्स्मरन्ति ॥२०॥

सं०—हि यतः कर्कङ्गते अर्के सति सुरापराह्णः, पुनः अस्य फलं तु रात्रिवत् आहुः। नक्रं मकरं गतेऽर्के सति च एषां देवानामपररात्रं स्यात् एतत्परं (तदनन्तरं) वासरवत् स्मरन्ति (आमनन्ति) ॥२०॥

भा०—कर्क में सूर्य जाते हैं तो देवों का अपराह्ण होता है, अतः उस (अपराह्ण) का फल रात्रिवत् मानते हैं। एवं मकर में सूर्य के जाने से देवों का अपरात्र होता है, अतः उसके बाद दिनवत् सांहितिक लोग मानते हैं ॥२०॥

एतदेव दृष्टान्तान्तरेण द्रढयति—

अतश्च कैश्चिद्दशमीष्वपि प्राक्कापालिको वेधविधिः किलोक्तः।
मासोऽन्य एवं नियमव्रतादौ पित्र्ये निशार्द्धे सति पौर्णमास्याम् ॥

सं०—अत एव किल कैश्चित (वैष्णवादिभिः) दशमीष्वपि प्राक्कापालिको वेधविधिः उक्तः। अर्थात् रात्र्युत्तरार्धेऽपि दसमीविद्धैकादशी त्यज्यते। एवं पौर्णमास्यां पित्र्ये निशार्धे सति नियमव्रतादौ अन्यो मासः (पूर्णिमामारभ्य कृष्णादिको मासः) गृह्यते। तथा च सिद्धान्तशिरोमणौ—
"विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम् ॥
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥" इति

भा०—इसी हेतु से कितने (वैष्णव और निम्बादित्यसम्प्रदाय के लोग) दशमी में पूर्वकापालिक वेध मानते हैं । अर्थात् मध्यरात्रि से मध्यदिन पर्यन्त पूर्व कपाल है—अतः रात्रि उत्तरार्ध में भी दशमी से बिद्धा एकादशी हो तो व्रत में त्याग देते हैं । इसी प्रकार पूर्णमासी में पितर लोग के मध्यरात्रि होने से नियम और कार्तिकादि व्रत में पूर्णिमान्त से ही (कृष्णादि) मास ग्राह्य है ॥

पुनः प्रमाणान्तरेण राहुसत्तां कथयति—

तदिति विद्यत एव स किं परै रुधिरबिन्दुवपुर्विलसन्ति ये ।
त इह तामसकीलककेतवः स्वपितृराहुसमर्थनहेतवः ॥२२॥

सं०—तत् तस्मात् इत्येवं स राहुर्विद्यत एव, परैः अन्यैः हेतुभिः किं ? न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः । इह आकाशे—रुधिरविम्बवपुर्यथा स्यात् तथा ये तामसकीलककेतवो विलसन्ति ते स्वपितृराहुसमर्थनहेतवः । अर्थात् ये तामसकीलकाख्याः केतवः सन्ति ते राहोः पुत्रा एतेत्यतो राहुरस्त्येवेत्यर्थः ॥ तथा च वराहसंहितायाम्—

"त्रिंशत्त्र्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याताः ।
रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कवच्चोक्तम् ॥" इति ॥२२॥

भा०—अतः उपरोक्त हेतुओं से राहु विद्यमान है । दूसरे हेतुओं से क्या प्रयोजन ? । और आकाश में रुधिरबिन्दु के समान भासमान जो तामस कीलक नाम से ख्यात केतु हैं वे भी अपने पिता राहु के समर्थक हैं । अर्थात् राहु के पुत्रों से भी राहु की सत्ता सिद्ध होती है ॥२२॥

उक्तार्थमेव द्रढ़यति—

यः पर्वगस्तस्य गतिर्न दृष्टा सैव ग्रहत्वेपि महत्प्रमाणम् ।
विलोमगामी विधुपात एव तस्माद्ग्रहो राहुरिति प्रतीतः ॥२३॥

सं०—यः पर्वगः ग्रहणस्थितो राहुः तस्य 'प्रत्यक्षरूपेण' गतिर्न दृष्टा, सैव (गतिरेव) ग्रहत्वे महत्प्रमाणं स्यात् । यस्मादेव विधुपातो विलोमगामी (पश्चिमगतिः) तस्माद् राहुरस्तीति प्रतीतः प्रत्ययं गत इति ॥२३॥

भा०—जो ग्रहण में स्थित रहता है उसकी गति प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती, तो भी वही (अनुमान से सिद्ध गति) ग्रहत्व में महा प्रमाण है । चन्द्रपात (राहु) विलोम (पश्चिमाभिमुख) चलता है, इसलिये राहु भी ग्रह है, यह प्रतीत हुआ ॥२३॥

अथ षड्वर्गाध्यायः ।

तत्रादौ लग्ने ज्ञाते सति द्वादशभावसाधनं कथयति—

कृत्वा लग्नादर्कवद्रात्रिखण्डं भूयो व्यक्षैस्तद्घटीभिर्विलग्नम् ।
चक्रार्धोने ते च तत्काल एव जायेयातामस्तमध्याह्नलग्ने ॥ १ ॥

सं०—लग्नात् अर्कवत् (यथा सायनसूर्यतश्चरं प्रसाध्य दिनमानं साध्यते तद्वत् सायनलग्नाच्चरं प्रसाध्य) रात्रिखण्डं (रात्र्यर्धं) कृत्वा भूयः (पुनः) व्यक्षैः (लङ्कोदयैः) तद्घटीभिः (रात्र्यर्धतुल्येष्टघटीभिः) विलग्नं साध्यम् । तच्चतुर्थलग्नं भवति । च (पुनः) ते (लग्न-चतुर्थलग्ने) चक्रार्धोने (षड्राश्यूने) तत्काले क्रमेण अस्तमध्याह्नलग्ने (सप्तम-दशम-लग्ने) जायेयाताम् भवेताम् ॥ १ ॥

भा०—जैसे सायनसूर्य पर से चरसाधनकर दिनमान बनाया जाता है उसी प्रकार सायन लग्न से चर बनाकर रात्र्यर्ध साधन कर उस रात्र्यर्ध को इष्टकाल मान कर लङ्कोदय द्वारा लग्न साधन करना वह चतुर्थ लग्न होता है । लग्न में ६ राशि घटाने से सप्तम, और चतुर्थ में ६ राशि घटाने से दशम, लग्न होता है ।

लग्नन्तुर्यात्तुर्यमस्ताद्विशोध्यं मध्यादस्तं मध्यमैन्द्रीविलग्नात् ।
शेषत्र्यंशान्द्विर्द्विराद्येषु दद्यादेवं भावाः सन्धिरेतद्दलैक्यम् ॥ २ ॥

सं०—तुर्यात् (चतुर्थभावात) लग्नम्, अस्तात् (सप्तमात्) तुर्यम्, मध्यात् (दशमात्) अस्तं सप्तमम्, ऐन्द्रीविलग्नात् (प्रथमलग्नात) मध्यं दशमं विशोध्यं, शेषत्र्यंशान् द्विर्द्विः क्रमेण आद्येषु (प्रथम-चतुर्थ-सप्तम-दशमेषु) दद्यात् योजयेत । एवं द्वादश भावा भवन्ति । एतद्दलैक्यं (एतेषु द्वयोर्द्वयोरर्धैक्यं = योगार्धमित्यर्थः) सन्धिः स्यात् ॥ २ ॥

भा०—लग्न को चतुर्थ में, चतुर्थ को सप्तम में, सप्तम को दशम में और दशम को प्रथम लग्न में घटाकर प्रत्येक शेष के तृतीयांश को प्रथम आदि चारो लग्न में दो दो बार जोड़ने से १२ द्वादश भाव होते हैं । और दो दो भावों के योग का आधा सन्धि होती हे ॥ २ ॥

वि०—जैसे—प्रथम को चतुर्थ में घटाकर शेष के तृतीयांश प्रथम लग्न में जोड़ने से द्वितीय भाव, और द्वितीय में उसी तृतीयांश को जोड़ने से तृतीय भाव होता है । इसी प्रकार चतुर्थ आदि में जोड़ने से पञ्चम आदि भाव होते हैं । तथा

प्रथम और द्वितीय भाव के योग का आधा करने से सन्धि होती है, वह प्रथम की विराम और द्वितीय की आरम्भ सन्धि होती है। इसी प्रकार जिन दो भावों के योग कर आधा किया जाता वह उन दोनो भावों की सन्धि होती है ॥ २ ॥

ग्रहाणां भावसम्बन्धिफलं कथयति—

सन्धौ खेटो निःफलो भावभागैस्तुल्यः सम्यग्भावपक्तिं व्यनक्ति।
सन्धेरूनाधिक्यमाप्तो गतैष्यभावाधीनं संदधाति स्वपाकम् ॥ ३ ॥

सं०—सन्धौ 'स्थितः' खेटो ग्रहो निष्फलो भवति, भावभागैस्तुल्यो-ग्रहो भावपक्तिं भावफलं सम्यग् व्यनक्ति ददातीत्यर्थः। सन्धेरूनाधिक्यं आप्तः गतः खेटः क्रमेण गतैष्यभावाधीनं स्वपाकं सन्दधाति - सन्धेरूनो ग्रहः पूर्वभावफलं, सन्धेरधिको ग्रहोऽग्रिमभावफलं ददातीत्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—सन्धि में (अर्थात् सन्धितुल्य) ग्रह निष्फल होता है (अर्थात् शुभ वा अशुभ कुछ भी फल नहीं देता है)। तथा भाव के अंश के तुल्य ग्रह पूर्णफल देता है। और सन्धि से अल्प हो तो उस सन्धि से पूर्वभाव का फल, और सन्धि से अधिक हो तो उस सन्धि से अग्रिमभाव का फल देता है ॥ ३ ॥

अथ राशिभावयोर्भेदे सति निर्णयमाह—

नाङ्गीकारो भावजानां गुणानां तद्दोषाणां तत्त्वतस्त्याग एव।
भावव्यक्तावष्टमत्वं गतोऽपि त्याज्यो लग्नात्सप्तमः सप्तसप्तिः ॥ ४ ॥

सं०—भावजानां (भवसम्बन्धिनां) गुणानां अङ्गीकारो न कार्यः, तद्दोषाणां भावदोषाणां तत्त्वतः त्याग एव कार्यः। यथा—लग्नात् सप्तमः सप्तसप्तिः (सूर्यः) भावव्यक्तौ सत्यां अष्टमत्वं गतोऽपि (अष्टमे शुभत्वं प्राप्तोऽपि) त्याज्य एव ॥ ४ ॥

भा०—भावस्पष्ट बनाने से भावकल्पनावश जो गुणप्राप्त हो उसका स्वीकार नहीं करना चाहिये। और भाव कल्पनावश जो दोष हो वह सर्वथा त्याज्य है। जैसे—लग्नकुण्डली में सप्तम रवि 'जो अशुभ कहा गया है' वह यदि भावकुण्डली के अनुसार अष्टम (अष्टम होने से शुभ) भी हो तथापि वह त्याज्य ही है ॥४॥

प्रत्याख्येयः पाक्षिकोपीह दोषः सम्यग्व्यापी यो गुणः सोऽनुगम्यः।
यस्मादंशैर्गेहभावाधिकः सन्न स्याद्भूत्यै भार्गवः पञ्चमोऽपि ॥५॥

सं०—हि यतः दोषः पाक्षिकोऽपि (न्यूनपक्षसम्भवोऽपि) प्रत्याख्येयः

त्याज्यः । तथा यो गुणः सम्यग् व्यापी (सर्वसम्मतः) सोऽनुगम्यः (अनुसरणीयः—ग्राह्य इत्यर्थः) तस्मात् कारणात् पञ्चमोऽपि (लग्नकुण्डल्यां पञ्चमस्थः शुभोपि) अंशैः गेहभावाधिकः (भावव्यक्तौ पञ्चमभावाधिकः = षष्ठभावं गतः) सन् भार्गवः शुक्रः भूत्यै (शुभाय) न स्यात् ॥ ५ ॥

भा० — क्योंकि—दोष पाक्षिक (अल्प अंश से) भी हो तो त्याज्य है । और जो गुण सर्वसम्मत हो उसका ग्रहण करना चाहिये । जैसे लग्नकुण्डली में पञ्चम स्थानास्थ 'शुभ' शुक्र भी यदि भाव के अंश से अधिक होकर षष्ठ भाव में प्राप्त हों तो वह शुभकारक नहीं होता है ॥ ५ ॥

वि०—इससे सिद्ध हुआ कि लग्नकुण्डली और भावकुण्डली दोनों प्रकार से जो ग्रह शुभ हो वह शुभ है । तथा एक प्रकार से शुभ और एक प्रकार से अशुभ हो तो वह अशुभ ही है ॥ ५ ॥

संक्रान्तिकालज्ञानादिष्टकाले स्पष्टसूर्यसाधनमाह—

सन्क्रान्त्यन्तर्वासरैर्यद्द्युवृन्दाल्लब्धं भानुर्भादि मेषादिमिश्रम् ।
भक्ता रामैर्लग्नभुक्ता नवांशा दिग्भिर्निघ्नास्ते तदंशा भवेयुः ॥६॥

सं०—संक्रान्त्यन्तर्वासरैः (गतैष्यसंक्रान्त्यन्तर्गतदिनैः) द्युवृन्दात् (गतसंक्रान्तिकालेष्टकालान्तर्गतदिनगणात्) लब्धं भादि (राश्यादिकं फलं) यत् 'तत्' मेषादिमिश्रं भानुः (तात्कालिकः सूर्यः) स्यात् ! अथेष्टलग्नांशसाधनमाह—लग्नभुक्ता नवांशा दिग्भिः (दशभिः) निघ्ना रामैर्भक्ताः ते तदंशाः (तस्य लग्नस्याभीष्टांशाः) भवेयुः ॥ ६ ॥

भा०—विवाहकालिक इष्ट समय में—गत संक्रान्तिकाल से इष्टकाल पर्यन्त जितने दिनादि हो उसमें गत और अग्रिम संक्रान्ति के अन्तर्गत दिनादि से भाग देने से राश्यादिक लब्धि में मेषादि गत संक्रान्ति तक की राशि संख्या मिलाने से स्पष्ट सूर्य होता है । तथा इष्ट लग्न में इष्ट नवांश से पूर्व की संख्या को १० से गुना करके ३ का भाग देने से लब्धि इष्ट लग्न के अंशादि होते हैं । इस प्रकार राश्यादि अभीष्ट लग्न का ज्ञान करना ॥ ६ ॥

अथ लग्न-सूर्याभ्यामिष्टकालज्ञानमाह—

रात्रौ भानुर्भार्धयुक्सायनांशस्तन्वर्कांशाः स्वोदयघ्नाः पृथक्के ।
त्रिंशद्भक्ता भुक्तभोग्याः पलादिस्तादृक्कालो मध्यगस्वोदयाढ्यः ॥

सं०—रात्रौ (रात्रिगतेष्टघटी-साधने) भानुः सूर्यः भार्धयुक्

(षड्राशियुक्तः) कार्यः, दिने तु यथास्थित एव सूर्यः, स सायनांशः अयनांशसहितः कार्यः, लग्नं च सायनाशं कार्यम्, अथ भुक्ता भोग्याः तन्वर्कांशाः (तनोः भुक्ताः, अर्कस्य भोग्या अंशाः) ते पृथक् स्वोदयघ्नाः त्रिंशद्भक्ता पलादिस्तादृक्कालः (अर्थात् तनोर्भुक्तकालः, सूर्यस्य भोग्यकालः सः) मध्यगस्वोदयाढ्यः (अर्क-तनुमध्यगतराशिस्वोदययुक्तः) अभीष्ट-कालो भवतीति शेषः ॥ ७ ॥

भा०—रात्रिगत इष्टकाल बनाना हो तो सूर्यमें ६ राशि जोड़ देना, और दिनमें केवल सूर्यही में अयनांश जोड़कर उसके भोग्यांशको, इष्ट लग्नमें अयनांश जोड़ कर उसके भुक्तांश को अपने देशीय उदय मान से गुनाकर ३० का भाग देनेसे क्रम से लग्न का भुक्तपल और सूर्य के भोग्यपल होते हैं। उनके योगमें सूर्य और लग्नकेमध्यगत राशियोंके स्वोदयमान जोड़ने से इष्टकाल होता है।

अथ लग्नात्कालहोराज्ञानं कथयति—

तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिण्डो भक्तः पञ्चक्षोणिभिर्भुक्तहोराः।
भास्वच्छुक्रज्ञेन्दुसौरार्यभौमाः संख्यायेरन्वारतस्ते तदीशाः ॥ ८ ॥

सं०—तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिण्डः (तत्कालसूर्योन-लग्नांशसमूहः) पञ्चक्षोणिभिः (पञ्चदशभिः) भक्तः, भुक्तहोराः स्युः। तदीशाः भास्वच्छुक्रज्ञेन्दुसौरार्यभौमाः इति क्रमेण वारतः (इष्टवारात्) संख्यायेरन् गणयेरन् ॥ ८ ॥

भा०—तात्कालिक सूर्य को लग्न में घटाकर शेष के अंशादि बनाकर उसमें १५ के भाग देने से गतकाल होरा होती है। सूर्यादिवारों में उनके स्वामी क्रम से सूर्य, शुक्र, बुध, सोम, शनि, बृहस्पति और मङ्गल होते हैं। जिस दिन होराज्ञान करना हो उसी दिन से आरम्भ कर उक्त क्रम से गिनकर समझना चाहिये ॥८॥

उदा०—जैसे गुरुवार में स्पष्ट सूर्य १। १५। १४। २० और लग्न ५। १६। २०। २५। लग्न में सूर्य को घटाकर ४। १। ६। ५ इसके अंशपिण्ड १२१। ६। ५ में १५ के भाग देने से लब्धि ८ गत होरा वर्तमान ९ वीं होरा हुई, अभीष्टवार बृहस्पति है, अतः बृहस्पति से बृहस्पति, मङ्गल, सूर्य इत्यादिक क्रम से ९ वाँ मंगल होरेश हुआ ॥ ८ ॥

पापहोराया निष्फलत्वं कथयति—

होराः क्रूराः सौम्यवर्गाधिके स्युर्लग्ने मोघाः सौम्यवारे च रात्र्याम्।

पापारिष्टं निष्फलं शक्तिभाजां स्यात्षड्वर्गे लग्नगे सद्ग्रहाणाम् ॥

सं०—सौम्यवर्गाधिके लग्ने क्रूरा होराः (पापग्रहसम्बन्धिहोराः) मोघाः (निष्फलाः) स्युः । एवं सौम्यवारे (शुभग्रहाणां दिने) रात्र्यां च क्रूरा होरा निष्फला भवन्ति । तथा—शक्तिभाजां सद्ग्रहाणां षड्वर्गे लग्नगे सति पापारिष्टं निष्फलं स्यात् ॥ ९ ॥

भा०—लग्न में अधिक शुभग्रह के वर्ग हो तो पापग्रह की होरा निष्फल होती है। एवं शुभग्रह के दिन में भी पाप होरा निफल, तथा रात्रि में भी पाप होरा निष्फल होती है। और बलवान् शुभग्रहों का षड्वर्ग लग्न में हो तो पापग्रह जन्य अरिष्ट भी निष्फल होता है ॥ ९ ॥

अथ ग्रन्थकारः स्वदेशाभिप्रायिकवारप्रवृत्तिमाह—

चरार्धदेशान्तरयुग्वियोगौ क्रमेण याम्योत्तरगोलगेऽर्के ।
योगे पुरा रव्युदयाद्वियोगे पश्चात्प्रवृत्तिर्दिनवारकर्तुः ॥१०॥

सं०—याम्योत्तरगोलगेऽर्के सति क्रमेण चरार्धदेशान्तरयुग्-वियोगौ कार्यौ (याम्यगोलगेऽर्के चरार्ध-देशान्तरपलानां योगः, उत्तर-गोले वियोग इत्यर्थः) योगे रव्युदयात् पुरा (पूर्वमेव), वियोगे रव्युद-यात् पश्चात् तद्योगान्तरपलैः दिनवारकर्तुः प्रवृत्तिः । अर्थात् दक्षिण-गोले पूर्वं, उत्तरगोले पश्चाद् वारप्रवृतिर्भवति ॥१०॥

भा०—दक्षिण गोल में सूर्य हो तो चरपल और देशान्तर पल के योग, और उत्तर गोल में अन्तर करके जो हो, दक्षिण गोल में सूर्योदय से योगपल तुल्य पूर्व और उत्तर गोल में सूर्योदय से अन्तरपल तुल्य पश्चात् वारप्रवृत्ति होती है ॥

वि०—लङ्का में सूर्योदयकाल से ही सर्वत्र वारप्रवृत्ति मानी जाती है। कारण कि—लङ्का में सूर्योदय काल ही में सृष्टि का आरम्भ हुआ। कहा भी है—

"लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव ।
मधोः सितादेर्दिन-मास-वर्ष-युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥"

लङ्का का याम्योत्तर वृत्त रेखा नाम से प्रसिद्ध है। रेखा और अपना स्थान का पूर्वापर अन्तर देशान्तर; तथा उन्मण्डल और अपना क्षितिजका अन्तर (अर्थात् लङ्का से दक्षिणोत्तर अन्तर) चरार्ध कहलाता है। अतः लंका क्षितिज और अपना क्षितिज का अन्तर चरार्ध और देशान्तर के संस्कार से हो सकता। परञ्च सब स्थान में सर्वथा दक्षिण गोल में योग, और सर्वथा उत्तर

गोल में अन्तर ही नहीं हो सकता है, यह गोल की स्थिति से प्रत्यक्ष है, अतः इस प्रकार से वारप्रवृत्ति सब देश के लिये मानना असङ्गत है। केवल रेखा से पश्चिम किसी एक स्थान में हो सकता है, प्रायः ग्रन्थकार ने उसी अभिप्राय से कहा है ॥१०॥

अथ वारप्रवेशादिष्टकालवशेन होरेशानयनमाह—

द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धतुल्या वारप्रवेशादपि कालहोराः।
संख्योक्तवत्तास्वथ यद्युभाभ्यां क्रूराः कुवर्गश्च तदातिदोषः ॥११॥

सं०—वारप्रवेशात् (वारप्रवृत्तिसमयात्) अपि द्विघ्नेष्टनाडीशर-लब्धतुल्याः कालहोरा भवन्ति। तासु (कालहोरासु) अपि संख्या पूर्ववत् —"भास्वच्छुक्रज्ञेन्दु" इत्यादिनैव ज्ञेया। यद्युभाभ्यां प्रकाराभ्यां क्रूरा होरा कुवर्गः पापवर्गश्च स्यात् तदाऽति दोषः स्यात् ॥११॥

भा०—वारप्रवेश समय से इष्ट घड़ी को दूना करके उसमें ५ का भाग देने से लब्धि काल होरा होती है, इसमें भी सूर्य, शुक्र, इत्यादि पूर्वोक्त रीति से होरा पति की संख्या समझना। यदि दोनों प्रकार से पापग्रह की होरा आवे और लग्न में अधिक पापग्रहों का वर्ग पड़े तो अत्यन्त दोष होता है। अतः उस लग्न को सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥११॥

अथान्यदोषानाह—

गण्डान्तेष्वपि वैधृतावुभयतः संक्रान्तियामद्वये
यामार्द्धव्यतिपातविष्टिकुलिकैर्भग्नं विलग्नं जगुः।
द्विद्व्यूना मनवोऽर्कतः कुलिकिनो व्येका मुहूर्ता निशि
त्याज्यास्तिथ्युडुवारजाश्च न परे दोषाः खशादीन्विना ॥१२॥

सं०—गण्डान्तेषु, वैधृतौ, उभयतः संक्रान्तियामद्वये (संक्रान्ति-कालादुभयत्र षोडश-षोडशघटिकास्वित्यर्थः) तथा यामार्धव्यतिपातविष्टि-कुलिकैः दोषैः विलग्नं भग्नं जगुः (आचार्याः ऊचुः)। अथ कुलिकं कथयति—द्विद्व्यूना मनवः (द्वाभ्यां द्वाभ्यां ऊनाश्चतुर्दश) अर्कतः रवि-मारभ्य क्रमेण कुलिकिनो भवन्ति। निशि रात्रौ व्येका मुहूर्ताः कुलिकिनो भवन्ति। ये च तिथ्युडुवारजाः परे दोषाःसन्ति ते खशादीन् (नेपाल-हूण-बङ्गान्) विना न त्याज्याः। तिथिनक्षत्रवारोद्भवा दोषास्तु हूणबङ्ग-खशेष्वेव त्याज्याः, अन्यत्र नेत्यर्थः ॥१२॥

भा०—गन्डान्त, वैधृति, और संक्रान्ति से पूर्व, पश्चात् १६, १६, घड़ी अर्धयाम, व्यतीपात, भद्रा, कुलीक इन दोषों से लग्न भंग कहा गया है। इन दोषों में कुलिक का मान कहते हैं—१४ में २, २, घटाने से (अर्थात् १४, १२, १०, ८, ६, ४, २ ये मुहूर्त) क्रम से सूर्यादिवारों में कुलिक होते हैं। और दिन के मुहूर्त संख्या में १ घटाने से रात्रि की मुहूर्त संख्या होती है। तथा तिथि, नक्षत्र, वार सम्बन्धी जो अन्य दोष हैं वे नेपाल, बङ्गाल और हूण (काश्मीर से उत्तरपश्चिम) देश से भिन्न देशों में त्याज्य नहीं हैं ॥ १२ ॥

अथ होरादिषड्वर्गं कथयति—

राश्यंशाः शशिभूगुणेक्षणहतास्तिथ्यभ्रभूदिक्शरै-
र्भक्ता भार्धदृकाणनन्ददिनकृद्भागा गृहं यस्य यत् ।
त्रिंशांशाः सितसौम्यजीवरविजक्ष्माजन्मनां व्युत्क्रमा-
दोजर्क्षेषु शराश्वसर्पमरुतः पञ्चेति षड्वर्गिका ॥१३॥

सं०—राश्यंशाः (लग्नस्य, ग्रहस्य वा राशिभुक्तांशाः) शशि-भूगुणे-क्षणहताः पृथक् क्रमेण तिथ्यभ्रभूदिक्शरैः भक्ताः क्रमशः भार्ध-दृकाण-नन्द-दिनकृद्भागाः (होरा-दृकाण-नवांश-द्वादशांशाः) भवन्ति । तथा यस्य यद् गृहं तत् तस्य गृहम् । समराशिषु सितसौम्यजीवरविजक्ष्माजन्मनां क्रमेण शराश्वसर्पमरुतः पञ्च इति त्रिंशांशाः स्युः, ओजर्क्षेषु व्युत्क्रमात् त्रिंशांशा ज्ञेयाः, इति (इयं) षड्वर्गिका स्यात् ॥ १३ ॥

भा०—ग्रह वा भाव जिसका षड्वर्ग विचार करना हो उसके राशि को छोड़ कर केवल अंश को १, १, ३, २ से गुनाकर पृथक् पृथक् १५, १०, १०, ५ से भाग देने से क्रम से होरा, दृकाण, नवांश और द्वादशांश होते हैं। तथा जिसकी जो राशि है वही उसका गृह कहाता है। और समराशियों में—शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल के क्रम से ५, ७, ८, ५ और ५ अंश तथा विषम राशियों में उत्क्रम से (अर्थात् मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र के ५, ५, ८, ७ और ५ अंश त्रिंशांश होते हैं। यह षड्वर्गी (षड्वर्ग) है ॥ १३ ॥

अथ राश्यधिपान् कथयति—

कुजकवीन्दुजचन्द्ररवीन्दुजाः सितकुजेज्ययमार्कजसूरयः ।
भवनपा लवपाश्च तदादयस्त्वजमृगाननतौलिकुलीरकाः ॥१४॥

सं०—कुज-कवीन्दुज-चन्द्ररवीन्दुजाः सित-कुजेज्ययमार्कजसूरयः 'क्रमेण' भवनपाः (मेषादिराश्यधिपाः) लवपाः (नवांशस्वामिनश्च) स्युः। तथा—अज-मृगानन-तौलि-कुलीरकाः 'क्रमात्' तदादयः (तेषां नवांशानां) आदयः (आदिराशयः स्युः) ॥१४॥

भा०—मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, रवि बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि और बृहस्पति ये क्रम से मेष आदि १२ राशियों के और नवांश राशियों के स्वामी हैं। तथा मेषादि राशियों में क्रम से मेष, मकर, तुला कर्क ये नवांश के आदि (आरम्भ राशि हैं) ॥१४॥

अथ होराद्रेष्काण-द्वादशांशान् कथयति—

होरे समेऽब्जखगयोर्विषमे रवीन्द्वो-
र्द्रेक्काणकाः प्रथमपञ्चनवेश्वराणाम्।
स्युर्द्वादशांशपतयः स्वगृहाच्छुभानि
भानि ग्रहाश्च निजमित्रशुभांशभाजः ॥१५॥

सं०—समे (समराशौ) अब्जखगयोः (चन्द्रसूर्ययोः), विषमे रवीन्द्वोः क्रमेण होरे भवतः। तथा—प्रथमपञ्चनवेश्वराणां द्रेक्काणका भवन्ति। स्वगृहात् (स्वराशिमारभ्य) द्वादशांशपतयः स्युः। शुभानां भानि शुभानि, निजमित्रगृहांशभाजो ग्रहाश्च शुभा भवन्ति ॥१५॥

भा०— सम राशि में प्रथम चन्द्र की तब सूर्य की, और विषम राशि में प्रथम रवि की तब चन्द्र की होरा होती है। तथा प्रथम पञ्चम और नवम राशियों के क्रम से द्रेकाण होते हैं। अपनी राशि से आरम्भ कर द्वादश राशियों के स्वामी द्वादशांश के स्वामी होते हैं। शुभग्रह की राशि, और ग्रह भी स्वकीय मित्र और शुभग्रह के नवांश में हों तो शुभ होते हैं ॥१५॥

अथ तिथिनक्षत्र-योगानां सन्धिकालमाह—

भजेत्तु भुक्त्यन्तरभुक्तियोगैः पृथक्पृथक् षष्टिगुणान् गुणाग्नीन्।
तिथीभयोगान्तरनाड्य इन्दोः पुण्या रवेः पुण्यतमास्त्विमाः स्युः॥

सं०—षष्टिगुणान् गुणाग्नीन् पृथक् पृथक् भुक्त्यन्तर-भुक्ति-योगैः भजेत् क्रमेण तिथी-भ-योगान्तरनाड्यः स्युः, एतदुक्तं भवति-षष्टिगुणित-त्रयस्त्रिंशतं चन्द्रार्कभुक्त्यन्तरेण भजेत् फलं तिथिसन्धिघट्यः, चन्द्र-भुक्त्या भजेत् फलं नक्षत्रसन्धिघट्यः, चन्द्रार्क-भुक्तियोगेन भजेत् फलं

योगनाड्यो भवन्तीत्यर्थः । इमाः (एवं प्रकारेण साधिताः अन्तरनाड्यः) इन्दोः पुण्याः, रवेस्तु पुण्यतमाः स्युः—एतदुक्तं भवति—त्रयस्त्रिंशतं षष्ट्या संगुण्य चन्द्रगत्या भजेत् लब्धफलं चन्द्रसंक्रान्तिकाले सन्धिनाड्यः, सूर्यगत्या भजेत् फलं सूर्यसंक्रान्तिकाले सन्धिनाड्यो भवन्ति, ताश्चन्द्रस्य सामान्यपुण्यप्रदाः, रवेस्तु पुण्यतमा भवन्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥

भा०— ३३ को ३ स्थान में रखकर ६० से गुना करके पृथक् पृथक् चन्द्रमा और सूर्य के गत्यन्तर, चन्द्रमा की गति और चन्द्र सूर्य की गति के योग से भाग देने से क्रम से तिथिसन्धि, नक्षत्रसन्धि, और योगसन्धि घटी होती है । इसी प्रकार ३३ को ६० से गुनाकर चन्द्रगति से भाग देकर लब्धि चन्द्र संक्रान्ति घटी और सूर्य गति से भाग देकर लब्धि सूर्य संक्रान्ति घटी होती है, इनमें चन्द्रमा की सन्धिघटी सामान्य पुण्यप्रद और सूर्यसंक्रान्ति की सन्धिघटी अतिशय पुण्यप्रद होती है ॥ १६ ॥

वि०—सूर्य और चन्द्रमा की बिम्बकला ३३ के लग भग है इसलिये स्वल्पान्तर से गतिकला में ६० घटी तो बिम्बकला में क्या ? इस अनुपात से संक्रान्ति का सन्धिकाल होता है ॥ १६ ॥

अथ कुजादिग्रहाणां संक्रान्तिकालं कथयति—

कुजादिकानामपि बिम्बलिप्ताः खषड्गुणाः स्वस्वजवेन भाज्याः ।
नाड्यादिकः संक्रमणान्तरालकालः स्फुटस्तत्स्फुटभुक्तिबिम्बैः ॥१७॥

सं०—कुजादिकानां मङ्गलादिग्रहाणामपि बिम्बलिप्ताः खषड्गुणाः स्वस्वजवेन (स्वस्वगत्या) भाज्याः फलं नाड्यादिकः संक्रमणान्तरालकालः स्यात् । तत्स्फुटभुक्तिबिम्बैः स्फुटः कालो भवति ॥ १७ ॥

भा०—मङ्गलादि-ग्रहों की बिम्बकला को भी ६० से गुना करके अपनी अपनी गतिकला से भाग देने से लब्धि घट्यादिक मङ्गलादि ग्रहों का संक्रान्तिकाल होता है । ग्रहों की स्पष्टगति और स्पष्टबिम्ब द्वारा स्पष्टकाल होता है ॥ १७ ॥

अथ वसन्ताद्यृतुज्ञानमाह—

रवेर्भवेदकगृहाधिकस्य यदंशवृन्दं खलु सायनस्य ।
यदत्र राशिद्वयभागतष्टलब्धं वसन्तादृतवो भवन्ति ॥१८॥

सं०—एकगृहाधिकस्य (एकराशियुक्तस्य) सायनस्य (अयनांश-

सहितस्य) रवेर्यदंशवृन्दं भवेत्, अत्र च यद् राशिद्वयभागतष्टलब्धं 'ते' वसन्ताद् वसन्तमारभ्य ऋतवो भवन्ति ॥१८॥

भा०—सायन सूर्य में १ राशि जोड़कर उसके अंशों में २ राशियों के अंश (६०) से भाग देकर लब्धि वसन्तादि ऋतु होता है ॥१८॥

उदा०—सूर्य ३ । ५ । १५ । २०, अयनांश २१ । ३० । ३२ सायन सूर्य के अंश ११६ । ४५ । ५२ इसमें ६० के भाग देने से लब्धि गतऋतु २, वर्तमान वसन्त से तृतीय वर्षाऋतु हुआ ॥१८॥

अथ ऋतुसन्धिकालं कथयति—

तत्सन्धयोऽङ्गाङ्गघटीसमाः स्युर्द्विसंगुणाश्चेद्विषुवायनीयाः ।
स सन्धिसन्धिः खलु यत्र शेषः शून्यं भवेदेष विशेषपुण्यः ॥१९॥

सं०—तत्सन्धयः (तेषां ऋतूनां सन्धयः) अङ्गाङ्गघटीसमाः (षट्षष्टिनाडितुल्याः) स्युः । विषुवायनीयाश्चेत् तदा द्विसंगुणाः (द्विगुणितषट्षष्टिघट्यः) भवन्ति । यत्र (राशिद्वयभागतक्षणकाले यदा) शेषः शून्यं भवेत् स 'कालः' सन्धिसन्धिः स्यात् । एष 'सन्धिसन्धिः' विशेषपुण्यो भवेत् ॥१९॥

भा०—उन ऋतुओं की सन्धि ६६ घटी होती है । यदि विषुव (मेष तुला) और अयन (कर्क, मकर) सम्बन्धी हो तो १३२ घटी अर्थात् ६६ पूर्व और ६६ पश्चात् सन्धि काल समझना । और जब एक राशियुक्त सायन सूर्य के अंश में ६० के भाग देने से शेष शून्य हो जाय तो वह काल सन्धि की सन्धि समझना वह विशेष पुण्यप्रद है ॥१९॥

अथोक्तसन्धिसमये विवाहफलं कथयति—

सन्धौ पुरन्ध्री शुचमेति वन्ध्या मृतप्रजा वा यदि सन्धिसन्धिः ।
वदन्ति वात्स्या ऋतुना विमूढां निशीथमध्यंदिनसन्धिषूढाम् ॥

सं०—सन्धौ (तिथि-नक्षत्र-योगानां सन्धिकाले) 'विवाहे सति' पुरन्ध्री शुचं (शोकं) ऐति प्राप्नोति, यदि सन्धिसन्धिस्तदा मृतप्रजा भवेत् । तथा निशीथमध्यन्दिनसन्धिषु ऊढां (विवाहितां) 'कन्यां' ऋतुना विमूढां आर्तव-विहीनां वात्स्या वदन्ति ॥२०॥

भा०—तिथि, नक्षत्र, योग की सन्धि में विवाह होने से स्त्री शोक में प्राप्त होती है । विवाह समय में सन्धिसन्धि हो तो स्त्री मृतवत्सा होती है । यदि मध्य

रात्रि और मध्य दिन की सन्धि समय में विवाह हो तो वह स्त्री मासधर्म से रहित होती है ॥२०॥

वि०—निशीथ और मध्यदिनसन्धि—

"मूर्तः कालो निवसति महानिशायां च दिनदले यस्मात् ।
दश पूर्वं दश परतस्तस्माद् वर्ज्यानि च पलानि ॥" इति ॥२०॥

अथ शूलादिदुष्टयोगसन्धीनां विशेषं कथयति—

शूलवैधृतवरीयसां च यत्पञ्चमेषु च तिथिष्ववान्तरम् ।
रेवतीन्द्रफणिभोद्भवन्तदप्यागताद्द्विगुणमुत्सृजेत्सुधीः ॥२१॥

सं०—शूलवैधृतवरीयसां योगानां यत् (पूर्वसाधितं) अवान्तरं, पञ्चमेषु तिथिषु (पञ्चमीदशमीपञ्चदशीषु) च यदवान्तरं, रेवतीन्द्र-फणिभोद्भवं च यदवान्तरं तदपि आगतात् (पूर्वसाधितात्) द्विगुणं सुधीः उत्सृजेत् (त्यजेत्) ॥ २१ ॥

भा०—शूल, वैधृत्, वारीपान् योगों की, तथा ५, १०, १५ तिथियों की रेवती, ज्येष्ठा, श्लेषा नक्षत्रों की जो सन्धि घटी हो उसका द्विगुणित काल पण्डितों को त्याग करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ मध्यगत्या नक्षत्रादिसन्धिघटिका आनीय कथयति—

नक्षत्रयोगतिथिसन्धिषु नाडिकैका
तिथ्यष्टविंशतिपलैः सहितोभयत्र ।
कर्कालिमीनतनुसन्धिषु दिक्पलानि
त्याज्यानि शेषविवरेष्वपि पञ्च पञ्च ॥ २२ ॥

सं०—नक्षत्र-योगतिथिसन्धिषु क्रमेण तिथ्यष्टविंशतिपलैः सहिता एका नाडिका उभयत्र (नक्षत्रयोगतिथ्यन्तात् पूर्वं पाश्चाच्च) त्याज्या । कर्कालिमीनतनुसन्धिषु 'उभयत्र' दिक्पलानि त्याज्यानि । शेषविवरेषु (शेषाणां वृषादिलग्नानां विवरेषु सन्धिषु) अपि पञ्च, पञ्च पलानि त्याज्यानि ॥ २२ ॥

भा०—नक्षत्र सन्धि में १ घटी १५ पल, योगसन्धि में १ घटी ८ पल, तिथिसन्धि में १ घटी २० पल पूर्व और पश्चात् त्याज्य है । कर्क, वृश्चिक और मीन लग्न की सन्धि में पूर्व, पश्चात् १० पल और शेष लग्नों में ५, ५ पल त्याज्य हैं ॥

अथ चान्द्रमाससन्धिमाह—

अमातिथिः पार्श्वतिथिद्वयेन समं न माङ्गल्यमुपादधाति ।
लोकंपृणस्तत्र तिथेः प्रणेता यस्मान्न पीयूषवपुर्वपुष्मान् ॥२३॥

सं०—अमा(अमावास्या)तिथिः पार्श्वतिथिद्वयेन(चतुर्दश्या प्रतिपदा च)समं सह माङ्गल्यं नोपदधाति । यस्मात् कारणात् तत्र लोकंपृणस्तिथिप्रणेता पीयूषवपुश्चन्द्रः वपुष्मान् (प्रशस्तबिम्बः) न भवति ॥ २३ ॥

भा०—अमावास्या अपने आगे और पीछे की दोनों तिथि (चतुर्दशी और प्रतिपदा) सहित विवाह में मङ्गलप्रद नहीं होती है । क्योंकि इन तीनों तिथियोंमें लोगोंका प्रिय तिथियोंका प्रणेता चन्द्रमा प्रशस्त बिम्बयुक्त नहीं रहता है ॥ २३ ॥

कैश्चित् चन्द्रबाल्याद् द्वितीयापि निषिद्धा तन्मतं दूषयति—

उदेति चायं प्रतिपत्समाप्तौ कृशोपि वर्धिष्णुतया प्रशस्तः ।
द्वीपान्तरस्थो विफलोपि तावद्यावन्न पृथ्वीनयनाध्वनीनः ॥२४॥

सं०—अयं (चन्द्रः) प्रतिपत्समाप्तौ उदेति, अतः कृशोऽपि स वर्धिष्णुतया प्रशस्तः स्यात् । द्वीपान्तरस्थः (अन्यत् द्वीपं द्वीपान्तरं तत्रस्थः देशान्तरदृष्टः) अपि चन्द्रः तावद् विफलः, यावत् पृथ्वीनयनाध्वनीनो न भवति (अर्थात् यावत् स्वदेशभूमिस्थितैर्जनैर्दृष्टो न भवति तावत् विफल एवेति) ॥२४॥

भा०—यह चन्द्रमा प्रतिपदाके अन्तमें उदित होता है इसलिये द्वितीयामें वर्धनशील होनेके कारण प्रशस्त माना जाता है । और दूसरे देशमें उदित चन्द्रमा भी तब तक विफल है जब तक स्वदेशभूमिस्थ लोगोंका दृष्टिगोचर न हो । अर्थात् जब तक अपने देशमें चन्द्रमा दृश्य हो तब तक ही उसका फल भी होता है ॥

अथ जन्ममासादिषु विवाहदिकं निषेधयति—

नो जन्ममासतिथिभेषु न चाधिकोने
मासे तिथौ च पृथुमङ्गलमामनन्ति ।
यज्ज्येष्ठगर्भजमपत्यमुपेतमेतज्
ज्येष्ठे महोत्सवमवश्यमियान्न वृद्धिम् ॥२५॥

सं०—जन्ममासतिथिभेषु पृथुमङ्गलं (चूड़ाकरणोपनयन-विवाहादिकं) नो आमनन्ति, अधिकोने मासे च न, तथा अधिकोने तिथौ (तिथि-

वृद्धौ तिथिक्षये) च न आमनन्ति (न कथयन्ति)। यत् ज्येष्ठगर्भजमपत्यं तत् ज्येष्ठे (ज्येष्ठमासे) महोत्सवं (चौलादिकं) उपेतं सत् अवश्यं (निश्चयं) वृद्धिं न इयात् (न प्राप्नुयात्) ॥२५॥

भा०—जन्ममास, जन्मतिथि और जन्मनक्षत्र में बृहत् मङ्गल (चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह आदि) शुभ नहीं कहा गया है। अधिक और क्षयमास तथा तिथिवृद्धि और तिथिक्षय में भी शुभ नहीं होता है। तथा ज्येष्ठ गर्भ का सन्तान जो हो उसका ज्येष्ठमास में चूड़ाकरण उपनयन विवाहादि महोत्सव हो तो अवश्य ही वृद्धिकारक नहीं होता है ॥२५॥

अथ गुणदोषविवेककर्तॄणां प्रशंसामाह—

इत्यतीन्द्रियदृशो निरूचिरे यद्गुणागुणमयं मुनीश्वराः।
दैवविद्विदितजन्मतन्मतः कीर्तिभाग्भवति लग्नलग्नधीः ॥२६॥

सं०—इत्येवमुपरोक्तं गुणागुणमयं अतीन्द्रियदृशो दिव्यदृष्टयो मुनीश्वरा यन् निरूचिरे, विदितजन्मतन्मतः (जन्म च तेषां मुनीनां मतं चेति जन्मतन्मते, विदिते जन्मतन्मते येन स तथोक्तः) लग्नलग्नधीः (लग्ने लग्ना धीर्बुद्धिर्यस्य सः) दैवविद् कीर्तिभाग् भवति ॥ २६ ॥

भा०—इस प्रकार उपरोक्त गुण और दोष दिव्यदृष्टि मुनीश्वरों ने जो कहा है, उन मुनियों के मत और जन्म समय को जाननेवाला तथा लग्न में निष्ठ बुद्धिवाला ज्यौतिषी संसार में कीर्तिभागी होता है॥ २६ ॥

अथ गोधूलिकाध्यायः।

तत्र गोधूलिकालं दर्शयन् स्वकवित्वकौशलं दर्शयति—

प्राचीं कुंकुमचर्चितामिव दिशं मुक्ताफलस्रग्विणीं
कौसुम्भांशुकभासिनीमिव दिशं प्राचेतसीं दर्शयन्।
यावद्याति करग्रहं सह रविः सन्ध्याकुरङ्गीदृशा
तावन्मङ्गलमङ्गलग्नसुरभीरेणोः करं गृह्णतः ॥ १ ॥

सं०—यावत् रविः सूर्यः मुक्ताफलस्रग्विणीं प्राचीं दिशं कुङ्कुमचर्चितामिव, प्राचेतसीं (प्रतीचीं) दिशं च कौसुम्भांशुकभासिनीमिव दर्शयन्

सन्ध्याकुरङ्गीदृशा (सन्ध्यैव कुरङ्गीदृग् वधूस्तया) करग्रहं याति तावत् पर्यन्तं अङ्गलग्नसुरभीरेणोः (अङ्गे लग्ना सुरभीणां धेनूनां रेणुर्धूलिर्यस्यास्तस्याः कुमार्याः) करं पाणिं गृह्णतः (वरस्य) मङ्गलं शुभं भवति ॥१॥

भा०—जब तक भगवान् सूर्य मुक्ताफलमाला सदृश तारागणपंक्ति को धारण की हुई पूर्व दिशा को कुङ्कुम से मण्डित के समान और पश्चिम दिशा को कुसुमरंग से रंगे वस्त्र से सुशोभित के समान बनाते हुए सन्ध्यारूपिणी वधू के साथ करग्रह को प्राप्त होते हैं तावत् काल पर्यन्त अङ्गों में लगी है गायों के चरण की धूली जिसके ऐसे कुमारिका के करग्रहण करनेवाले पुरुष का मङ्गल होता है ॥ १ ॥

अथ गोधूलिलक्षणं तदधिकारिणश्चाह—

उत्कर्णतर्णकविलोकनवल्गुवल्गत्पीनस्तनोद्धृषितदुर्धरधेनुधूलिः ।
गोधूलिकं सृजति गोपपृथग्जनानां दोषैर्महद्भिरपि लग्नमनूनमन्यैः ॥

सं०—उत्कर्णतर्णकविलोकनवल्गुवल्गत्पीनस्तनोद्धृषित-दुर्धरधेनुधूलिः (उत् ऊर्ध्वौ कर्णौ यासां ता उत्कर्णास्ताश्च तर्णकानां विलोकनेन वल्गवः शोभमानाः वल्गन्त्यः पीनस्तनाः, उद्धृषिताः दुर्धराश्च ता धेनवश्च तासां धूलिः) गोधूलिकं लग्नं सृजति । इदं गोधूलिलग्नं गोपपृथग्जनानां (गोपाश्च पृथग्जना हीनवर्णाश्च तेषां) अन्यैर्महद्भिर्दोषैः अनूनं (सहितं) अपि शुभं भवति ॥ २ ॥

भा०—कान को ऊपर उठाई हुई, बछड़ों को देखने के लिये मीठी शब्द करती हुई पीनस्तनवाली अत्यन्त हृष्ट और बड़े कठिन से थाम्ह कर रखने योग्य गायों के द्वारा उत्पन्न धूलि गोधूलिक लग्न बनाती है । यह गोधूलिक लग्न गोपों और हीनवर्णों के लिये अन्य महादोषों से युक्त होने पर भी शुभ होता है ॥ २ ॥

केचित् गोधूलिकेऽपि षष्ठाष्टमचन्द्रं त्यजन्ति तन्निरस्यति—

गोधूलिकेपि विधुमष्टमषष्ठमूर्तिं यन्मोचयन्ति तदयं स्वरुचिप्रपञ्चः ।
पञ्चाङ्गशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्यैर्यस्मादिदं सततमस्तगते पतङ्गे ॥

सं०—गोधूलिकेऽपि अष्टमषष्ठमूर्तिं (अष्टमषष्ठयोर्मूर्तिर्देहो यस्य तं) विधुं चन्द्रं यत् मोचयन्ति 'केचित्' तदयं 'तेषां' स्वरुचिप्रपञ्चः (स्वरुच्यैव प्रपञ्चो व्यामोहनं) स्यात् । इदं गोधूलिकं विवाहधिष्ण्यैः (विवाहविहित-नक्षत्रैः) पञ्चाङ्गशुद्धिमयमेव ग्राह्यम् । यस्मादिदं सततं (सर्वदा) अस्त-

गते सप्तमस्थे पतंगे सूर्ये सत्येव भवति । गोधूलिलग्ने विवाहविहितनक्षत्रे सति पञ्चाङ्गशुद्धिरेव विलोक्या न पुनर्लग्नशुद्धिरित्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—गोधूलिक लग्न में भी कितने आचार्य अष्टम षष्ठ चन्द्र को जो त्याज्य कहे हैं वह उनका अपनी रुचि का ही प्रपञ्च है । क्योंकि सर्वदा सप्तम स्थित सूर्य में ही गोधूलिक लग्न होता है, इसलिये इसमें विवाहविहित नक्षत्र और पञ्चाङ्ग शुद्धि मात्र देखना चाहिये ॥ ३ ॥

नांशो न लग्नमिह दृष्टयुतं स्वभर्त्रा नार्कारसौरतमसामपि सङ्गभङ्गः ।
किं चन्द्रचारभयमेकमिहास्तु किंचिन्मात्र प्रमाणवचनं किमपि श्रुतं नः ॥

सं०—इह (अस्मिन् गोधूलिके) अंशः (नवांशः) स्वभर्त्रा दृष्टयुतो न, लग्नं च स्वभर्त्रा दृष्टयुतं न भवतु । तथा च अर्कारसौरतमसां (रवि-कुज-शनिराहूणां) अपि सङ्गभङ्गः (सङ्गेन योगेन भङ्गः) न भवति । इहास्मिन् एकं चन्द्रचारभयं पुनः किमस्तु । अत्र किञ्चित् प्रमाणवचन-मपि नः (अस्माकं) न श्रुतम् ॥ ४ ॥

भा०—इस गोधूलि लग्नमें नवांश वा लग्न अपने अपने स्वामीसे युक्त दृष्ट न हो । इसमें सूर्य, मङ्गल, शनि और राहुके योगसे भी भङ्ग नहीं होता है । फिर केवल एक चन्द्रचार का क्या भय हो सकता है ? तथा इसमें (उपरोक्त अष्टम षष्ठस्थित चन्द्र त्याग में) प्रमाण वचन भी हम लोगों ने कुछ नहीं सुना है ॥४॥

अत्र किं विलोक्यमित्याह—

सार्के शनौ विरवि चित्रशिखण्डिसूनौ
तत्केवलं कुलिकयामदलोपलम्भात् ।
प्रायेण शङ्करभुवामशुभर्क्षपक्ष-
क्रूरक्षणेषु शुभकृत्करपीडनं स्यात् ॥ ५ ॥

सं०—तत् (गोधूलिकं) शनौ शनिदिने सार्के सूर्यसहितं ग्राह्यम् । चित्रशिखण्डिसूनौ (गुरुदिने) विरवि, 'अस्तंगतेऽर्कविम्बे' ग्राह्यमित्यर्थः । तदपि केवलं कुलिकयामदलोपलम्भात् (कुलिकस्य, यामदलस्योपलम्भः प्राप्तिस्तस्मात्) । अत्र प्रायेण विशेषेण शङ्करभुवां हीनवर्णानां अशुभर्क्ष-पक्ष-क्रूरक्षणेषु अपि करपीडनं शुभकृत् स्यात् किं पुनः पञ्चाङ्गादिशुद्धौ सत्यामित्यर्थः ॥ ५ ॥

भा०—शनिवार में सूर्यबिम्ब दृश्य रहते हुए ही, और गुरुवार में सूर्यबिम्ब के अस्त होने पर गोधूलिक लग्न ग्रहण करना चाहिये। यह भी केवल शनिवार में अस्त के बाद कुलिक की प्राप्ति और गुरुवार में अस्त से पूर्व अर्धयाम की प्राप्ति होने के कारण समझना। इस गोधूलि में अशुभ नक्षत्र कृष्णपक्ष और दुर्मुहूर्त होने पर भी हीनवर्णों का विवाह शुभकारक होता है ॥ ५ ॥

सार्कं शनावित्यादि यदुक्तं तत्परिमाणं कथयति—

अत्रोभयत्र घटिकादलमिष्टमाहुर्ग्राह्यस्तदम्बरमणेरपि नार्धविम्बः ।
कालार्गलानियतये तपनार्धविम्बवेलाव्यवस्थितिरियं रचयांबभूवे ॥

सं०—अत्र (गोधूलिके) उभयत्र (विम्बार्धास्तमयात् पूर्वं पश्चाच्च) घटिकादलं (घट्यर्धं) इष्टमाहुः । तत् तस्मात् अम्बरमणेः सूर्यस्य अर्धविम्बः (अर्धबिम्बं यस्मिन् सः) अपि 'कालो' न ग्राह्यः । इयं तपनार्धविम्बबेलाव्यवस्थितिः कालार्गलानियतये 'ऋषिभिः' रचयांबभूवे 'रचितेत्यर्थः' ॥ ६ ॥

भा०—इस गोधूलि में सूर्य के अर्धास्त से पूर्व और पश्चात् आधा घड़ी इष्ट कहा गया है। इसलिये सूर्य के अवशिष्ट अर्धविम्ब जितने समय में अस्त हो वह काल भी ग्राह्य नहीं है। क्योंकि—यह सूर्य के विम्बार्ध समय की व्यवस्था काल के मध्य के नियमार्थ मुनियों ने बनाई है ॥ ६ ॥

अथ मासगोचराध्यायः ।

तत्र सौरचान्द्रमासयोर्विचारं कथयति—

चैत्रे मासि प्रतिपदि तिथौ वासरेऽर्कस्य सर्वै-
र्मेषादिस्थै-र्गगनगतिभि-र्भूर्भुवःस्वःप्रवृत्तिः ।
एवं पौषे मृगमुखगते भास्वति स्यान्न चासा-
वुक्तः श्रेयान्परिणयविधाविन्दुमासोऽस्ति तस्मात् ॥ १ ॥

सं०—चैत्रे मासि प्रतिपदि तिथौ अर्कस्य वारे सर्वैर्गगनगतिभिः (ग्रहैः) मेषादिस्थैः सद्भिः भूर्भुवःस्वः प्रवृत्तिः बभूव । एवं पौषे मासे मृगमुखगते मकरादिस्थे भास्वति सूर्ये च न स्यात् । तस्मात् कारणात्

परिणयविधौ विवाहविषये असौ इन्दुमासः (चान्द्रमासः) श्रेयान् अति श्रेष्ठ उक्तोस्ति ॥ १ ॥

भा०—चैत्रमास प्रतिपदा रविवार में सूर्यादि समस्त ग्रहों के मेषादि में स्थित होने पर भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक की प्रवृत्ति हुई। इस प्रकार पौष मास मकरादिस्थित सूर्य में उक्त लोकों की प्रवृत्ति नहीं हुई, अतः विवाह विषय में वह चन्द्रमास ही अत्यन्त श्रेष्ठ कहा गया है ॥ १ ॥

वि०—"लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव ।
मधोःसितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत्प्रवृत्तिः ॥"

लङ्का के क्षितिज में मेषादिस्थित सूर्य और चन्द्रमा के होने पर लोकत्रय की प्रवृत्ति हुई। वहाँ सूर्य और चन्द्रमा को तुल्य राश्यादि होने के कारण चान्द्रमास की प्रवृत्ति हुई है, और सूर्य ही की होरा होने के कारण रविवार भी हुआ। और मेषादि में सूर्य के होने से चैत्रमास भी हुआ। चान्द्रमास की गणना चैत्रादि से ही होती है। और सौर मास की प्रवृत्ति मकरादिस्थ सूर्य से समस्त संहिताकारों ने कही है। इसलिये चान्द्रमास की ही प्रधानता हुई, सौरमास की नहीं।

अथ सौरचान्द्रयोर्विरोधे सयुक्तिकं निर्णयं कथयति—

नेष्टः पौषो मृगयुजि रवावादृतश्चेत्प्रवीणै-
श्चारुश्चैत्रोप्यजसहचरे भास्करे सुन्दरीणाम् ।
माण्डव्याद्यैः स्मृतशुभफलस्यास्य किं नोपयामे
मीनोपि स्यादविकृतफलः फाल्गुनस्य प्रसङ्गात् ॥ २ ॥

सं०—सुन्दरीणां नारीणां उपयामे विवाहे मृगयुजि मकरस्थे रवौ पौषो नेष्टः स्यात्। चेत् (यदि)प्रवीणैः (कैश्चित् पण्डितं मन्यैः) मृगेऽर्के पौषः आदृतः स्वीकृतः तदा अजसहचरे मेषगते भास्करे चैत्रोऽपि चारुः शुभः स्यात्। किञ्च माण्डव्याद्यैः आचार्यैः स्मृतशुभफलस्यास्य फाल्गुनस्य प्रसङ्गात् (योगात्)मीनोऽपि (मीनस्थितार्कोऽपि) अविकृतफलः (न विकृतं फलं यस्य स तथा) किं न स्यात्। अपि त्वविकृतफल एव स्यात् ॥

भा०—स्त्रियों के पाणिग्रहण में मकरस्थित सूर्य में भी पौष मास नेष्ट है, अगर कोई प्रवीण उसे (मकस्थ सूर्य में पौष को) स्वीकार करते हैं तो मेषस्थ सूर्य में चैत्र भी शुभ हो सकता है। और माण्डव्यादि आचार्यों से कथित शुभ

फाल्गुन मास के योग से क्या मीन भी अविकृत फल (यथोक्त फलप्रद) नहीं हो सकता है ? अर्थात् अवश्य अपने अशुभ फल को ही दे सकता है ॥ २ ॥

अतोऽत्र सिद्धान्तमाह—

झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः ।
मध्वाश्रितौ द्वावपि वर्जनीयावित्यादिवाचामियमेव युक्तिः ॥ ३ ॥

सं०—यदि फाल्गुने मासे झषः (मीनस्थोऽर्कः) तदा न निन्द्यः स्यात् । अजः मेषार्कस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः स्यात् । मध्वाश्रितौ चैत्रमासगतौ द्वौ (मीनमेषार्कौ) अपि वर्जनीयौ चान्द्रमासस्य प्राधान्यात् । इत्यादि-वाचां इत्याद्युक्तवतां युक्तिः इयमेव कथितैवेत्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—यदि फाल्गुन मास में मीन गत रवि हो तो निन्द्य नहीं है । और वैशाख में मेषगत सूर्य हो तो निन्द्य नहीं है । तथा चैत्र मास में दोनों (मीनार्क मेषार्क) त्याज्य है इत्यादि कहनेवालों की युक्ति यही है । अर्थात् चन्द्रमास में ही प्राधान्य माना गया है ॥ ३ ॥

यदि चान्द्रमासस्य प्राधान्यं तदा पृथक् सौरमासं किमुक्तमित्याह—

प्रायः सौरं मानमिष्टं विवाहे तत्किं चान्द्रं मासमाहुः फलेन ।
यस्मात्सम्यक्तत्फलाप्तिस्तदैक्ये सौरो मासः केवलः किञ्चिदूनः ॥

सं०—प्रायः (विशेषेण) विवाहे सौरं मानमिष्टं, तत् (तदा) फलेन चान्द्रं मासं किं आहुः ? यस्मात् कारणात् तदैक्ये (तयोः सौर-चान्द्रयोः) ऐक्ये तत् फलाप्तिः (विवाहफललब्धिः) सम्यक् संपूर्णा भवति । केवलः सौरो मासः किञ्चिदूनः स्यात् ॥ ४ ॥

भा०—विवाह में बहुधा सौरमान ही इष्ट है, तो शुभाशुभ फल से पृथक् चान्द्रमास शौनकादिकों ने क्यों कहा ? इसलिये कि—सौर और चान्द्र दोनों के ऐक्य होने से परिपूर्ण फल होता है । केवल सौरमास कुछ न्यून है ॥ ४ ॥

अथ गोचराष्टकवर्गयोर्बलाबलं कथयति—

योषितां गुरुपतङ्गगोचरे शोभने शुभकरः करग्रहः ।
अष्टवर्गविधिना तदत्यये सूर्यशुद्धिमपरे नृणां जगुः ॥ ५ ॥

सं०—योषितां नारीणां गुरुपतङ्गगोचरे शोभने (गोचरयुक्त्या गुरु-बले, सूर्यबले च) सति करग्रहो विवाहः शुभकरः स्यात् । तदत्यये

(गोचरविधिना स्त्रीणां गुरुसूर्यबलालाभे) सति अपरेऽन्ये अष्टवर्ग-विधिना नृणां वराणां सूर्यशुद्धिं जगुः ॥ ५ ॥

भा०—गोचर विधि से स्त्रियों के गुरुबल और सूर्यबल प्राप्त होने पर विवाह शुभ है। यदि गोचर विधि से गुरुबल और सूर्यबल प्राप्त नहीं हो तो अष्टवर्ग विधि से पुरुष का ही रविबल ग्रहण करना अन्य आचार्यों ने कहा है ॥ ५ ॥

अत्र गोचरस्यैव कथं मुख्यतेति कथयति—

अष्टवर्गफलमेव जातके नास्य किं परिणयेपि मुख्यता।
सत्यमुद्वहनजन्मशास्त्रयोरन्यथा मुनिभिरेव संस्मरे ॥ ६ ॥

सं०—जातके होराशास्त्रे अष्टवर्गफलमेवास्ति, अतः परिणये विवाहेऽपि अस्य अष्टवर्गफलस्य मुख्यता किं न स्यात् ? इति सत्यम्, उद्वहन-जन्मशास्त्रयोः विवाहजातकशास्त्रयोः अन्यता (भिन्नता) मुनिभिरेव संस्मरे स्मृतेत्यर्थः ॥ ६ ॥

भा०—जातकशास्त्र में अष्टवर्ग से ही फल कहा गया है, इसलिये विवाह में भी इस (अष्टवर्ग फल) की मुख्यता क्यों न हुई ? यह सत्य है; परञ्च मुनियों ही ने जातकशास्त्र और विवाह में भिन्नता कही है ॥ ६ ॥

अत्रोदाहरणं कथयति—

क्रूरमष्टममरिष्टमिष्टदं सप्तमं शुभमुशन्ति जन्मनि।
नेयमुद्वहनरीतिरित्यसावत्र गोचरपथो रथोद्धतः ॥ ७ ॥

सं०—जन्मनि जन्मकाले (जातके) अष्टमं क्रूरं पापग्रहं अरिष्टदं (अशुभप्रदं) सप्तमं सप्तमस्थानस्थं शुभं शुभग्रहं इष्टदं (शुभप्रदं) उशन्ति कथयन्ति। इयं उद्वहनरीतिः (विवाहविधिः) न भवति। इत्यस्मात् कारणात् अत्र (विवाहे) असौ गोचरपथः रथोद्धतः (रथैरुद्धत उद्घृष्टः परम्परागतः स्फुट एवेत्यर्थः) ॥ ७ ॥

भा०—जातकशास्त्र में अष्टम पापग्रह शुभप्रद, और सप्तम शुभग्रह शुभप्रद है। परञ्च यह विवाह की रीति नहीं है, अर्थात् विवाह में अष्टम पाप और सप्तम शुभग्रह भी अशुभ ही है। इसलिये विवाहमें यह गोचरविधि परंपरागत स्पष्ट है ॥

अथ ग्रहयोगाध्यायः।

तत्रादौ चक्रयोगं तत्फलं चाह—

चक्रस्यार्धे प्राचि पश्चात्क्रमेण क्रूराक्रूरैश्चक्रमित्यामनन्ति।
अत्रोढायाः सुभ्रुवः स्वैरिणीत्वे भ्राम्यत्युच्चैश्चक्रवच्चित्तवृत्तिः॥ १॥

सं०—चक्रस्य (राशिमण्डलस्य) प्राचि पश्चादर्धे क्रमेण क्रूराक्रूरैः चक्रं (चक्रनामयोगं) इति आमनन्ति, 'आचार्या' इति शेषः। दशमभावमारभ्य चतुर्थभावपर्यन्तं चक्रस्य पूर्वार्धम्, चतुर्थाच्च दशमपर्यन्तं पश्चिमार्धं तत्र क्रमेण पापशुभैः स्थितैश्चक्रनामयोगो भवतीत्यर्थः। अत्रास्मिन् योगे ऊढाया विवाहितायाः सुभ्रुवः कन्यायाः चित्तवृत्तिः स्वैरिणीत्वे पुंश्चलीत्वविषये उच्चैश्चक्रवद् भ्राम्यति सा स्त्री पुंश्चली भवतीत्यर्थः॥ १॥

भा०—राशिमण्डल के पूर्वार्ध (दशम भाव से आगे चतुर्थभावपर्यन्त) में सब पापग्रह और पश्चिमार्ध (चतुर्थ भाव से आगे दशमभाव पर्यन्त) में सब शुभग्रह हों तो चक्रनाम योग होता है। इस योग में विवाहिता स्त्री की मनोवृत्ति पुंश्चलित्व विषय में विशेषकर भ्रमित होती है, अर्थात् वह पुंश्चली होती है॥ १॥

तनुनिमीलनगैश्च शुभाशुभैर्ध्वज इतीह कृतोद्वहना वधूः।
सगुणलाभवती भवतीङ्गितैः प्रियमनोयमनोन्मुखविभ्रमा॥ २॥

सं०—शुभाशुभैः क्रमेण तनुनिमीलनगैः (लग्नाष्टमस्थितैः) ध्वज इति योगो भवति। इहास्मिन् ध्वजयोगे कृतोद्वहना वधूः सगुणलाभवती भवति। तथा च इङ्गितैः स्वचेष्टितैः प्रियमनो-यमनोन्मुखविभ्रमा (प्रियस्य स्वामिनो मनः प्रियमनस्तस्य यमनं आकर्षणं तत्रोन्मुखो विभ्रमो विलासो यस्याः सा तथोक्ता) भवति॥ २॥

भा०—लग्न में शुभग्रह और अष्टम में पापग्रह हो तो ध्वजनामक योग होता है। इस योग में विवाहिता स्त्री गुणसहित लाभवती और अपनी चेष्टाओं से अपने स्वामी के मन को आकर्षण करनेवाली होती है॥ २॥

अखिलकेन्द्रसखैः खलखेचरैर्भवति वापिरिहार्पितपुंस्करा।
युवतिरुज्झितकान्तगृहा गृहे जनयितुः कुरुते कुरतोत्सवान्॥ ३॥

सं०—अखिलकेन्द्रसखैः खलखेचरैः (सर्वेषु केन्द्रेषु स्थितैः पापग्रहैः) वापिः वापिनामयोगो भवति। इहास्मिन् योगे अर्पितपुंस्करा

(अर्पितः पुंसे करो यया सा तथोक्ता) युवतिः उज्झितकान्तगृहा (त्यक्तपतिभवना सती) जनयितुः पितुः गृहे कुरतोत्सवान् कुरुते ॥ ३ ॥

भा०— चारों केन्द्र में पापग्रह हों तो वापिनायक योग होता है। इस योग में विवाहिता स्त्री अपने पति के गृह को त्याग कर पिता के घर में कुरत (परपुरुषों के साथ प्रेम) से आनन्द करती है ॥ ३ ॥

गगनतोयतपस्सु शुभैर्भृगुर्गदति शंखमशंस्खलयत्यसौ ।
धनयशोनयशोभितनुश्रियां परिणयेन पयोरुहचक्षुषाम् ॥ ४ ॥

सं०—गगनतोयतपस्सु (दशम-चतुर्थनवमेषु) शुभैः शुभग्रहैः सद्भिः भृगुमुनिः शंखं (शङ्खनामयोगं) गदति । असौ योगः धनयशोनयशोभितनुश्रियां (धन-यशो-नयैः शोभिनी तनुः यासां ता धनयशोनयशोभितनुश्रियः, तासां तथोक्तानां) पयोरुहचक्षुषां (कमलनेत्राणां) स्त्रियां अशं (दुःखं) स्खलयति निराकरोति ॥ ४ ॥

भा०—१०, ४, ९ भावों में शुभग्रह हों तो भृगुमुनि शंख योग कहते हैं। विवाह में यह योग—धन, यश, नीति से सुशोभित शरीरवाली कमलनयना स्त्री के दुःख को नाश कर देता है, अर्थात् अत्यन्त सुखप्रद होता है ॥ ४ ॥

एकादशे कुजरवी रविजः सपत्ने
वित्ते विधुस्तपसि शेषनभश्चराश्चेत् ।
श्रीवत्स एष सुखयत्यपि रूपरिक्तां
सौभाग्यभोगभरभङ्गितरङ्गिताङ्गीम् ॥ ५ ॥

सं०--एकादशे कुजरवी, सपत्ने (षष्ठे) रविजः, वित्ते (द्वितीये) विधुः, तपसि (नवमे) शेषनभश्चराश्चेद् तदा श्रीवत्सो नाम योगः स्यात् । एष योगः रूपरिक्तां (रूपहीनां) अपि सौभाग्यभोगभरभङ्गितरङ्गिताङ्गीं (सौभाग्यभोगस्य भरो भारस्तस्य भङ्गी रचना तया तरङ्गितानि अङ्गानि यस्यास्तां तथोक्तां) स्त्रियं सुखयति ॥ ५ ॥

भा०—लग्न से ११ भाव में मङ्गल रवि, षष्ठ में शनि, द्वितीय में चन्द्रमा, नवम में शेष ग्रह (बुध, बृहस्पति, शुक्र) हों तो श्रीवत्स नामक योग होता है, विवाह में यह योग रूपहीना स्त्री को भी सौभाग्य और सुख भोग के भार को रचनाओं से उमङ्ग अङ्गवाली बनाता है ॥ ५ ॥

सौम्या मूर्तौ स्वान्तराश्योरसौम्याः कुर्युर्योगं कार्मुकं कन्यकास्मिन् ।
हत्वा कान्तं कान्तवेषा विषाद्यैर्वेश्यारामं रंरमीति स्वरत्या ॥६॥

सं०—मूर्तौ (लग्ने) सौम्याः शुभग्रहाः, स्वान्तराश्योः (द्वितीय-द्वादशभावयोः) असौम्याः पापग्रहाः कार्मुकं योगं कुर्युः । अस्मिन् (कार्मुके योगे) विवाहिता कन्यका कान्तवेषा (मनोहरस्वरूपा) विषाद्यैः विषशस्त्रादिभिः कान्तं स्वामिनं हत्वा वेश्यारामं (वेश्यां रमयतीति वेश्यारामस्तं वैश्यागामिनं पुरुषं) रंरमीति (अतिशयेन रमयतीत्यर्थः) ॥ ६ ॥

भा०—लग्न में शुभग्रह और द्वितीय द्वादश में पापग्रह हों तो कार्मुक योग होता है, इस योग में विवाहिता कन्या सुन्दर वेषवाली होकर विष आदि से अपने पति को मारकर अपनी रति से वेश्यागामी पुरुष को प्रसन्न करती है ॥६॥

सूनौ शुक्रः साङ्गिरा गौररश्मिर्दुश्चिक्ये स्यादङ्गनाभ्युद्गमश्चेत् ।
आनन्दोऽयं सुन्दरी सान्द्रसौख्या तेनानन्दं वंशयोर्विस्तृणाति ॥७॥

सं०—सूनौ (पञ्चमभावे) शुक्रः, दुश्चिक्ये तृतीये साङ्गिरा गौररश्मिः (सगुरुश्चन्द्रः) चेत् अङ्गनाभ्युद्गमः (कन्यालग्नं) तदाऽयं आनन्दो नाम योगः स्यात् । तेन योगेन सुन्दरी सान्द्रसौख्या सती वंशयोः आनन्दं विस्तृणाति विस्तारयति ॥ ७ ॥

भा०—पञ्चम भाव में शुक्र, तृतीय में गुरु सहित चन्द्रमा तथा कन्या लग्न हो तो यह आनन्द नामक योग होता है । इस योग में विवाहिता स्त्री अत्यन्त सुखयुक्ता होकर दोनों वंश को आनन्दित करती है ॥ ७ ॥

व्ययरिपुहिबुकेषु वक्रशुक्रद्युमणिसुतैः क्रमशः कुठार एषः ।
इह विहरति संहृतस्ववंशा विटपटले पटलेखिताभिसारा ॥ ८ ॥

सं०—वक्रशुक्रद्युमणिसुतैः क्रमशः व्यय-रिपुहिबुकेषु स्थितैः एषः कुठारः (कुठाराख्ययोगः) स्यात् । इह (अस्मिन् कुठारयोगे) विवाहिता कन्या संहृतस्ववंशा (संहृतो नाशितः स्ववंशो यया सा तथोक्ता) पटलेखिताभिसारा (पटे वस्त्राञ्चले लेखितोऽभिसारो यस्याः सा तथोक्ता सती) विटपटले जारसमूहे विहरति (क्रीडते) ॥ ८ ॥

भा०—द्वादश में मंगल, षष्ठमें शुक्र, और चतुर्थ भाव में शनि हो तो कुठार नामक योग होता है । इसमें विवाहिता स्त्री अपने वंश को नष्ट करके अभिसारिणी होकर परपुरुष के साथ विहार करती है ॥ ८ ॥

रविकविरविजेन्दुभिः क्रमेण व्ययधनषण्निधनेषु कूर्म एषः ।
इह विहितकरग्रहा गृहाणि भ्रमति भुजिष्यतया परःशतानि ॥९॥

सं०—रवि-कवि-रविजेन्दुभिः क्रमेण व्यय-धन-षण्-निधनेषु स्थितैः एषः कूर्मः (कुर्मनामा योगः) स्यात्, इह (अस्मिन्योगे) विहितकरग्रहा (कृतविवाहा) भुजिष्यतया (भुजिष्यायाः परिचारिकायाः भावो भुजिष्यता तया) परः शतानि शतेभ्योऽधिकानि गृहाणि भ्रमति ॥ ९ ॥

भा०—द्वादश में सूर्य, द्वितीय में शुक्र, षष्ठ में शनि और अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तो कूर्म योग होता है । इस योग में विवाहिता स्त्री सौ से भी अधिक घरों में नौकरनी होकर भ्रमण करती है ॥ ९ ॥

भवपरिभवविक्रमैः क्रमेण द्युमणिमहीसुतसौरिभिः सनाथैः ।
परिणमति दलेन्दुरिन्दुमुख्याः कुलयुगलोद्धृतिधुर्यतां विधास्यन् ॥

सं०—भव-परिभव-विक्रमैः (एकादश-षष्ठ-तृतीयैः) क्रमेण द्युमणि-महीसुत-सौरिभिः सनाथैः (सहितैः) इन्दुमुख्याः (चन्द्रवदनायाः कन्यायाः) कुलयुगलोद्धृतिधुर्यतां विधास्यन् (करिष्यन्) दलेन्दुः (अर्धचन्द्रयोगः) परिणमति भवतीत्यर्थः ॥१०॥

भा०—एकादश, षष्ठ और तृतीय भावों में क्रम से सूर्य, मंगल और शनि हों तो कन्या को दोनों (पति और पिता के) कुल के उद्धार करने में योग्या बनाने वाला अर्धचन्द्रनामक योग होता है । अर्थात् इस योग में विवाहिता कन्या दोनों कुल का उद्धार करती है ॥१०॥

व्ययनिधनतनूषु मन्दचन्द्रारुणकिरणैर्मुशलं जगुर्मुनीन्द्राः ।
इह वृष्णिकुलान्तके कुमारी कुलमारी न च कापि कार्यसिद्धिः ॥

सं०—व्यय-निधन-तनूषु क्रमेण मन्दचन्द्रारुणकिरणैः स्थितैः मुनीन्द्राः मुसलं योगं जगुः । इहास्मिन् वृष्णिकुलान्तके मुसले योगे विवाहिता कुमारी कुलमारी (कुलनाशिनी) भवति । तथा च कापि कार्य-सिद्धिर्न भवति ॥ ११ ॥

भा०—१२, ८, और लग्न इनमें क्रम से शनि, चन्द्र और सूर्य हों तो मुनियों ने मुसल नामक योग कहा है । इस यादव कुल को अन्त करने वाले (मुसल) योग में विवाहिता स्त्री कुल को नाश करने वाली होती है । और उसकी कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ ११ ॥

वि०—मुसल से ही यादवों का नाश हुआ यह भागवत में प्रसिद्ध है ॥११॥

तनुनवभवगैः क्रमेण योगो बुधविबुधार्चितपङ्गुभिर्गजः स्यात् ।
इह युवतिरहंकृता कृतार्थान्वितरति दैवतदैवतत्परा वा ॥१२॥

सं०— बुध-विबुधार्चित-पङ्गुभिः क्रमेण तनुनवभवगैः (लग्न-नवमैकादशस्थैः) गजः (गजाख्यो) योगः स्यात् । इहास्मिन् योगे विवाहिता युवतिः (स्त्री) अहंकृता (अहंकारयुता) सती कृतार्थान् (उपार्जितार्थान्) वितरति (ददाति), वा दैवत-दैवतत्परा (दैवतानि = देवाः, दैवं = भाग्यं तत्परा) भवति ॥१२॥

भा०—बुध, गुरु, और शनि ये क्रम से लग्न, नवम और एकादश भावों में हों तो गज नामक योग होता है । इस योग में विवाहिता स्त्री अहंकारयुक्ता होकर अपनी सञ्चित सम्पति को दान करनेवाली अथवा देवता और प्रारब्ध की उपासना करनेवाली होती है ॥ १२ ॥

अथ ग्रहभावकुण्डलिकाध्यायः ।

तत्रादौ लग्नस्थग्रहाणां फलान्याह—

चिरञ्जीवां जीवः कविरविरलानङ्गसुभगां
शशाङ्कोर्वीपुत्रौ यमयुवतिपार्श्वप्रणयिनीम् ।
बुधो भर्तुर्भक्तां मृगदृशमशीलां शनिरपि
त्रयीमूर्तिर्मूर्तौ सृजति शिखिशस्त्रादिनिधनाम् ॥ १ ॥

सं०—मूर्तौ लग्ने जीवो गुरुः मृगदृशं स्त्रियं चिरञ्जीवां सृजति करोति । कविः शुक्रः अविरलानङ्गसुभगां (अविरलेनाङ्गेन कामेन सुभगां सौभाग्यवतीं) सृजति । शशाङ्कोर्वीपुत्रौ (चन्द्र-भौमौ) यमयुवतिपार्श्वप्रणयिनीं यमगृहगामिनीं सृजतः । बुधो भर्तुः स्वामिनो भक्तां सृजति । शनिः अशीलां शीलरहितां सृजति । त्रयीमूर्तिः सूर्यः मूर्तौ लग्ने स्थितः शिखिशस्त्रादिनिधनां (शिखिनाऽग्निना, शस्त्रादिना च निधनं यस्यास्तां तथोक्तां) सृजति करोति ॥ १ ॥

भा०—विवाह लग्न में गुरु हो तो स्त्री को चिरजीविनी बनाता है, शुक्र हो तो अत्यन्त काम और सौभाग्य से युक्ता, चन्द्रमा और मंगल हो तो यमराज की स्त्री के पास जानेवाली, बुध हो तो स्वामी में भक्ति रखने वाली, शनि हो तो दुष्ट स्वभाव वाली और सूर्य लग्न में हो तो अग्नि तथा अस्त्र आदि से मरने वाली स्त्री को बनाता है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयभावगतग्रहाणां फलानि—

नितान्तधनिनीं धने सितसितांशुजीवेन्दुजा
रुजादहनदस्युभिर्विधुरितां धरानन्दनः ।
सुतेष्वपि मितम्पचां मलिनमूर्तिमर्कात्मजः
स्त्रियं सहजदुर्भगां जनयति द्युतीनां पतिः ॥ २ ॥

सं०—धने द्वितीयभावे सित-सितांशु-जीवेन्दुजाः स्त्रियं (विवाहितां कन्यां) नितान्तधनिनीं (अतिधनवतीं) जनयन्ति । धरानन्दनः (मङ्गलः) रुजा-दहन-दस्युभिर्विधुरितां दुःखितां जनयति । अर्कात्मजः (शनिः) सुतेषु (आत्मजेषु) अपि मितम्पचां कृपणां मलिनमूर्तिं जनयति । द्युतीनां पतिः (सूर्यः) सहजदुर्भगां स्वभावदुर्भगां जनयति ॥ २ ॥

भा०—विवाह लग्न से द्वितीय भाव में शुक, चन्द्रमा, बृहस्पति और बुध ये कन्या को अत्यन्त धनवती बनाते हैं। मंगल रोग, अग्नि और चोरों के भय से पीड़ित बनाता है। शनि द्वितीय भाव में हो तो अपने पुत्रों के प्रति भी कृपण बुद्धि वाली और मलिन शरीरवाली स्त्री को बनाता है। और सूर्य द्वितीय भाव में हो तो स्वभाव से ही दुर्भगा स्त्री होती है ॥ २ ॥

अथ तृतीयभावगतग्रहाणां फलानि—

इनशनी सहजे सधनां वधूं तनुधनां सचिवः शुभगां शशी ।
सुकृतिनीं कुरुतः कुजसोमजौ नयति देवरि देवरिपूपनीः ॥ ३ ॥

सं०—सहजे तृतीयभावे 'स्थितौ' इन-शनी सूर्य-शनैश्चरौ वधूं स्त्रियं सधनां धनयुक्तां कुरुतः । सचिवो बृहस्पतिः तनुधनां स्वल्पधनवतीं, शशी सुभगां करोति । कुजसोमजौ (मंगल-बुधौ) सुकृतिनीं पुण्यवतीं कुरुतः । तथा देवरिपूपनीः (देवरिपून् दैत्यान् उपनयत्यसौ देवरिपूपनीः शुक्रः) वधूं स्त्रियं देवरि (देवरे) नयति प्रापयति देवरगामिनीं करोतीत्यर्थः ॥३॥

भा०—तृतीय भाव में सूर्य और शनि हों तो धनवती, बृहस्पति हो तो अल्प धनवाली, चन्द्रमा हो तो सुभगा, मंगल बुध हों तो पुण्यवती, और शुक्र हो तो स्त्री देवरगामिनी होती है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थभावगतग्रहाणां फलानि—

दारिद्र्यं रविरवनीसुतो वराङ्ग-
व्याघातं गुरुभृगुजेन्दुजाः प्रभुत्वम् ।
बाल्येऽब्जः प्रियवियुतिं शनिः स्तनाम्भः-
शून्यत्वं सृजति सुखे सुवासिनीनाम् ॥ ४ ॥

सं०—सुखे चतुर्थभावे स्थितो रविः सुवासिनीनां स्त्रीणां दारिद्र्यं सृजति करोति । अवनिसुतो मङ्गलो वराङ्गव्याघातं (वराङ्गस्य भगस्य व्याघातं भङ्गं) सृजति । गुरुभृगुजेन्दुजाः प्रभुत्वं, अब्जश्चन्द्रः बाल्ये बाल्यावस्थायां प्रियवियुतिं स्वामिवियोगं, शनिः स्तनाम्भःशून्यत्वं स्तन्य-दुग्धशून्यत्वं सृजति ॥ ४ ॥

भा०—विवाह लग्न से चतुर्थ भाव में सूर्य हो तो स्त्री को दारिद्र्य, मङ्गल हो तो भग में आघात, बृहस्पति, शुक्र, बुध ये प्रभुत्व, चन्द्रमा हो तो बाल्यावस्था में स्वामी का वियोग और शनि हो तो स्तन में दूध की हानि करता है ॥ ४ ॥

पञ्चमभावगतग्रहाणां फलानि—

सत्पुत्रामसुरसुरेज्यसोमपुत्राः पुत्रारिं रविरसुतप्रजां द्विजेन्द्रः ।
शोकार्तामवनिसुतः सुतस्थ ऐनिः सन्ताने सततरुजं सृजेत्कुमारीम् ॥

सं०—असुरसुरेज्यसोमपुत्राः (गुरु-शुक्र-बुधाः) सुतभावस्थाः कुमारीं सत्पुत्रां सृजेयुः । रविः सुतस्थः पञ्चमस्थः पुत्रारिं पुत्रघातिनीं सृजेत् । द्विजेन्द्रश्चन्द्रः पञ्चमस्थः असुतप्रजां (कन्यासन्ततिं), अवनिसुतः मङ्गलः शोकार्तां, ऐनिः शनिः सुतस्थः सन्ताने सन्ततौ सततरुजं कुमारीं सृजेत् ।

भा०—शुक्र-गुरु बुध ये पञ्चम भाव में हों तो स्त्री को योग्य पुत्रवाली बनाते हैं । रवि हों तो पुत्रघातिनी, चन्द्रमा हों तो कन्या सन्तानवाली, मङ्गल हो तो शोक से पीड़िता, और शनि हो तो सन्तान के विषय में सर्वदा रोगवाली स्त्री होती है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठभावस्थग्रहाणां फलानि—

विधुर्निधनमिन्दुजः परभयं जयं भानुमान्
कुजः कुशलमर्कभूर्विगतवैरितां वैरिगः ।
रिपुत्वमुशनाः समं सहचरेण चारुभ्रुवां
व्यनक्ति वचसां पतिः पतिमजातशत्रुश्रुतिम् ॥ ६ ॥

सं०—वैरिगः षष्ठभावगतो विधुश्चन्द्रः चारुभ्रुवां स्त्रियां निधनं मरणं इन्दुजो बुधः परभयं शत्रुभयं, भानुमान् सूर्यो जयं, कुजः कुशलं, अर्कभूः शनिः विगतवैरितां शत्रुरहितत्वं, उशनाः शुक्रः सहचरेण समं (स्वामिना सह) रिपुत्वं, वचसांपतिः बृहस्पतिः पतिं भर्तारं अजातशत्रुश्रुतिं (न जाता शत्रुश्रुतिर्यस्य तथाभूतं) व्यनक्ति प्रकटयति ॥ ६ ॥

भा०—विवाह लग्न से षष्ठ भाव में चन्द्रमा हों तो कन्या की मृत्यु, बुध हों तो शत्रु से भय, सूर्य हों तो विजय, मंगल हों तो कुशल, शनि हों तो बैर-रहिता, शुक्र हों तो पति से शत्रुता, बृहस्पति हो तो उस स्त्री के पति को अजात-शत्रु (जो शत्रु का नाम भी नहीं सुना हो ऐसा) बनाता है ॥ ६ ॥

अथ सप्तमभावगतग्रहाणां फलानि—

बुधो बन्ध्यामिन्दुः परिचितसपत्नीपरिभवां
गलद्गर्भां पङ्गुः परनररतां दानवगुरुः ।
अवीरामस्तेऽर्को गुरुरमरसेवाव्यसनिनीं
विवाहे माहेयः स्त्रियमतिरजस्कां जनयति ॥ ७ ॥

सं०—विवाहे अस्ते सप्तमभावे बुधः स्त्रियं बन्ध्यां, इन्दुः परिचित-सपत्नीपरिभवां सपत्नीक्लेशयुतां, पङ्गुः शनिः गलद्गर्भां, दानवगुरुः शुक्रः परनररतां, अर्कः अवीरां पतिरहितां, गुरुः अमरसेवाव्यसनिनीं देवा-राधनतत्परां, माहेयो मङ्गलः अतिरजस्कां प्रदरव्याधियुतां जनयति ॥७॥

भा०—विवाह लग्न से सप्तम भाव में बुध हो तो स्त्री को बन्ध्या, चन्द्रमा हो तो सौत के दुख से पीड़िता, शनि हो तो गर्भस्राव, शुक्र हो तो परपुरुष-गामिनी, सूर्य हो तो पतिपुत्ररहिता, बृहस्पति हों तो देवसेवा में तत्पर, और मंगल हो तो प्रदर रोगयुक्त स्त्री को बनाता है ॥ ७ ॥

अथाष्टमस्थानस्थग्रहाणां फलानि—

सितसितकिरणेज्या मृत्यवे मृत्युवेश्म-
न्यनवरतसुखायुःसम्पदे सूर्यसौरी ।
भवति पतिशरीरद्रोहकृद्रौहिणेयो
द्रुहिणगृहमुखीनां यक्ष्मणे क्षोणिजन्मा ॥ ८ ॥

सं०—मृत्युवेश्मनि अष्टमस्थाने सितसितकिरणेज्याः द्रुहिणगृहमुखीनां कमलवदनानां स्त्रीणां मृत्यवे मरणाय भवन्ति । सूर्य-सौरी अनवरतसुखायुः-सम्पदे भवतः । रौहिणेयो बुधः पतिशरीरद्रोहकृद् भवति । क्षोणिजन्मा कुजः यक्ष्मणे राजयक्ष्मरोगाय भवति ॥ ८ ॥

भा०—विवाह लग्न से अष्टम स्थान में शुक्र, चन्द्र, बृहस्पति हों तो स्त्रियों के मृत्युकारक होते हैं। सूर्य और शनि सदा सुख-आयु-सम्पत्ति देते हैं। बुध स्वामी के शरीर में आघात करनेवाला होता है। और मङ्गल अष्टम स्थान में हो तो यक्ष्मारोगकारक होता है ॥ ८ ॥

अथ नवमस्थानस्थग्रहाणां फलानि—

शशिसुतगुरुशुक्राः सान्द्रसौभाग्यलीलां
सरलहसितकान्तस्वान्तकेलिं कुमारीम् ।
रविरविसुतवक्राः कैतवाक्रान्तशीलां
तपसि तुहिनरश्मिः स्त्रीसवित्रीं करोति ॥ ९ ॥

सं०—तपसि नवमस्थाने शशिसुत-गुरु-शुक्राः कुमारीं सान्द्रसौभाग्य-लीलां सरलहसितकान्तस्वान्तकेलिं च कुर्वन्ति । रवि-रविसुत-वक्राः कैतवाक्रान्तशीलां (कपटयुतस्वभावां) कुर्वन्ति । तुहिनरश्मिश्चन्द्रः स्त्री-सवित्रीं (कन्याप्रसवां) करोति ॥ ९ ॥

भा०—विवाहलग्न से नवम भाव में बुध, गुरु, शुक्र हों तो अत्यन्त सौभाग्य-वती और सरल हास्य से स्वामी के हृदय में केलि करनेवाली कन्या होती है। सूर्य, शनि, मंगल ये हों तो कपट स्वभाववाली, और चन्द्रमा नवम भाव में हो तो स्त्री को कन्या सन्तानवाली बनाता है ॥ ९ ॥

अथ दशमभावगतग्रहाणां फलानि—

शनिरनियमशौचां कन्यकामन्यकार्यै-
र्विधुरतिविधुराङ्गीं शाकिनीं व्योम्नि वक्रः ।
रचयति रविरुग्रां कोविदः कार्मणज्ञा-
मविकृतसुकृतश्रीमालिनीमार्यशुक्रौ ॥१०॥

सं०—व्योम्नि दशमस्थाने स्थितः शनिः कन्यकां अनियमशौचां रचयति । विधुश्चन्द्रः अन्यकार्यैः अतिविधुराङ्गीं (अत्यन्तविकलाङ्गीं), वक्रो मङ्गलः शाकिनीं (मांसादिभक्षणतत्परां), रविः उग्रां दुःशीलां, कोविदः बुधः कार्मणज्ञां (कार्मणं क्षुद्रकर्म जानातीति तथाभूतां) आर्य-शुक्रौ अविकृतसुकृतश्रीमालिनीं (पूर्णपुण्यसम्पत्तिसहितां) रचयतः । मालिनीति च्छन्दोऽपि सूचितम् ॥ १० ॥

भा०—विवाहलग्न से दशमस्थान में शनि हो तो कन्या नियम से शौच (पवित्रता) रखनेवाली नहीं होती है । चन्द्रमा हो तो दूसरों के कार्य से अत्यन्त खिन्न शरीर वाली होती है । मंगल हो तो शाकिनी के समान (मांसादि भक्षण करने वाली), रवि हो तो दुष्ट स्वभाववाली, बुध हो तो क्षुद्रकर्म को करनेवाली और गुरु, शुक्र हो तो पूर्ण पुण्य और सम्पत्ति वाली होती है ॥ १० ॥

अथैकादशभावगतग्रहाणां फलानि—

एकादशे दशशतांशुमुखाः सुखानि
रत्नाम्बरद्रविणभोगभरोन्मुखानि ।
पाणिग्रहे ददति दीर्घदृशां ग्रहेन्द्राः
सर्वेऽपि सर्वभवनेष्वबला न किञ्चित् ॥११॥

सं०—पाणिग्रहे विवाहे एकादशे स्थाने दशशतांशुमुखाः (रव्यादयः) सर्वेऽपि ग्रहेन्द्राः दीर्घदृशां मृगलोचनानां स्त्रीणां रत्नाम्बरद्रविणभोग-भरोन्मुखानि सुखानि ददति । अबला निर्बला ग्रहाः सर्वेष्वपि भावेषु किञ्चित् अपि फलं न ददति । अर्थात् सबला ग्रहा एवोक्तं फलं दातु-मर्हन्ति, नाबला इति ॥ ११ ॥

भा०—विवाह लग्न से ११ स्थान में स्थित सूर्यादि सब ग्रह स्त्रियों को रत्ना-भरण, वस्त्र, धन आदि भोग सुख देते हैं । निर्बल ग्रह कुछ भी (शुभ या अशुभ)

भावफलों को नहीं दे सकता है। अर्थात् सबल ग्रहों का ही भावफल समझना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादशस्थानस्थितग्रहाणां फलानि—

व्यये शुभाः सद्व्ययकर्षितां शनिः
सुरारुचिं रचयति दुर्विधां विधुः।
अदक्षिणावयवरुजं कुजो रवि-
र्विरूपयत्यतिरुचिरामपि स्त्रियम् ॥१२॥

सं०—व्यये द्वादशस्थाने शुभाः (शुभग्रहाः चन्द्रबुधगुरुशुक्राः) सद्व्ययकर्षितां स्त्रियं रचयति। शनिः सुरारुचिं, विधुः दुर्विधां दुष्टकार्यां, कुजः अदक्षिणावयवरुजं (वामाङ्गरोगिणीं), रविः अतिरुचिरां (अतिसुन्दरीं) अपि स्त्रियं विरूपयति रूपहीनां करोति। रुचिरेति च्छन्दोपि सूचितम् ॥ १२ ॥

भा०—विवाह लग्न से द्वादश स्थान में शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) हों तो स्त्री को समुचित व्यय (खर्च) करनेवाली बनाते हैं। शनि हो तो मदिरा से रुचि रखने वाली, चन्द्रमा हो तो कुकर्म करने वाली, मंगल हो तो वाम अंग में रोग वाली और सूर्य हो तो अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को भी कुरूपा बना देते हैं ॥ १२ ॥

अथ फलानां प्राशस्त्यं कथयति—

इति मुनिजनमतमतनुवितर्कं प्रतिगृहचरखचरोद्यदुदर्कम्।
परिविगणय्य विशेषमशेषं फलमिदमूह्यमनुज्झितरेखम् ॥१३॥

सं०—इत्येवमुक्तं मुनिजनमतं अतनुवितर्कं (अतनुर्बहुः वितर्को यस्य तत्) प्रतिगृहचरखचरोद्यदुदर्कं (प्रतिराशिगतखचराणां उद्यन् उदर्को भाविफलं यस्मिन् तत्) इदं अशेषं (समस्तं) फलं विशेषं परिविगणय्य (सम्यग् विचार्य) अनुज्झितरेखं (नोज्झिता रेखा येन तत् तथोक्तं) ऊह्यम् ज्ञेयम् ॥ १३ ॥

भा०—इस प्रकार मुनिजनों के सम्मत प्रति राशिगत ग्रहों के भविष्य शुभाशुभ है जिसमें ऐसे पूर्वोक्त फलों को विशेष रूप से विचार करके सत्य समझना चाहिये ॥ १३ ॥

अथ ग्रहयोगादिबलाबलाध्यायः।

तत्रादौ भावफलोपसंहारादिकं कथयति—

षट्त्र्यायेष्वशुभाः शुभाय निधनद्यूनान्त्यवर्जं परे
त्र्यायार्थेषु शशी मृतौ शनिरवी भङ्गाय तत्रापरे।
क्रूरद्यूनवृतान्विते शशितनू अस्ते सितज्ञौ विधु-
र्लग्ने सोमसिताधिपा द्विषि सितः सेन्दुर्विनष्टोंऽशपः ॥१॥

सं०—षट्त्र्यायेषु स्थानेषु अशुभाः पापग्रहाः शुभाय भवन्ति, अर्थादन्यभावेषु अशुभाय भवन्ति। परे (शुभग्रहाः) निधनद्यूनान्त्यवर्जं (अष्टम-सप्तम-द्वादशस्थानानि वर्जयित्वाऽन्यस्थानेषु) शुभाय भवन्ति। त्र्यायार्थेषु शशी चन्द्रः शुभाय भवति। मृतौ अष्टमे शनि-रवी शुभाय भवतः। तत्राष्टमेऽपरे (चन्द्र-कुज-बुध-गुरु-शुक्राः) भङ्गाय भवन्ति। शशितनू चन्द्रलग्ने क्रूरद्यूनवृतान्विते (क्रूरेण पापेन द्यूनं सप्तमस्थानं वृतं आक्रान्तं ययोस्ते तथा क्रूरेणाऽन्विते युक्ते) भङ्गाय भवतः। अस्ते सप्तमे सित-ज्ञौ भङ्गाय भवतः। विधुर्लग्ने, सोमसिताधिपाः (सोमश्चन्द्रः, सितः शुक्रः, अधिपा लग्नद्रेष्काणांशस्वामिनस्ते) द्विषि षष्ठभावे भङ्गाय, तथा सेन्दुश्चन्द्रसहितोंऽशपो लग्नांशपतिर्नष्टोऽस्तङ्गतो भङ्गाय लग्नभङ्गकारको भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥

भा०—६, ३, ११ स्थानों में पापग्रह (शनि, मंगल, सूर्य, राहु) शुभप्रद होते हैं। अर्थात् अन्य स्थानों में अशुभ होते हैं। तथा शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) ८, ७, १२ इन स्थानों को छोड़कर शेष स्थानों में शुभ होते हैं। अर्थात् ८, ७, १२ में अशुभप्रद होते हैं। ३, ११, २ में चन्द्रमा शुभ होता है। ८ में शनि और रवि शुभप्रद होते हैं। तथा इस (अष्टम) में शेषग्रह (चन्द्र, कुज, बुध, गुरु, शुक्र) भङ्गकारक होते हैं। चन्द्र और लग्न से सप्तम में तथा चन्द्र लग्न के साथ में पापग्रह हो तो भङ्गकारक होता है। सप्तम में शुक्र, बुध भङ्गकारक होते हैं। लग्न में चन्द्रमा, षष्ठ में चन्द्रमा, शुक्र और लग्ननवांश-द्रेष्काण के स्वामी भङ्गकारक होते हैं। तथा नवांशपति सहित चन्द्रमा अस्त हो तो भङ्गकारक होता है ॥ १ ॥

अथ सप्तमदशमस्थानस्थचन्द्रस्य विशेषमाह—

अतुर्यकायकेन्द्रगः सुहृत्स्वसौम्यवर्गयुक्।

सुहृच्छुभेक्षितः शुभः शशी मयूखमांसलः ॥ २ ॥

सं०—अतुर्यकायकेन्द्रगः (तुर्यकायाभ्यां चतुर्थलग्नाभ्यामन्यत् तत्केन्द्रं चेत्यतुर्यकायकेन्द्रं तन्नगतः सप्तमदशमभावस्थः) सुहृत्स्वसौम्यवर्गयुक् सुहृच्छुभेक्षितः मयूखमांसलः (अंशपूर्णः) शशी शुभः स्यात् ॥ २ ॥

भा०—सप्तम और दशमभाव में चन्द्रमा यदि मित्र, शुभग्रह या अपने वर्ग में हो मित्र और शुभग्रह से देखा जाता हो और सम्पूर्ण किरणवाला हो तो शुभ होता है ॥ २ ॥

वि०—"त्रिकोणसप्तमाम्बरव्ययोपगो विलग्नतः। हिमद्युतिः शुभर्क्षगः शुभेक्षितश्च शोभनः॥" इस प्रकार शौनक मुनि ने द्वादश स्थान में भी शुभ कहा है। परञ्च द्वादशस्थानस्थ चन्द्र को नारदजी ने महादोष में कहा है अतः आचार्य ने उसे त्याग कर दिया है ॥ २ ॥

अथ शुभयोगान् कथयति—

शशितनयसिताभ्यां नन्दभद्रावुभाभ्यां
जय इति तनुयाते जीव इत्येष जीवे।
असुरसुरगुरुभ्यां स्थावरो ज्ञेज्यशुक्रै-
र्विजय इति विशुक्रं तं च जीमूतमाहुः ॥ ३ ॥

सं०—शशितनयसिताभ्यां (बुध-शुक्राभ्यां) 'तनुगताभ्यां' 'क्रमेण' नन्द्र-भद्रौ योगौ भवेताम्। बुधेन लग्नगतेन नन्दः, शुक्रेण भद्र इत्यर्थः। उभाभ्यां बुधशुक्राभ्यां लग्नगताभ्यां जय इति योगः स्यात्। जीवे गुरौ तनुयाते लग्नगते इत्येष जीवो नाम योगः स्यात्। असुरसुरगुरुभ्यां तनुगताभ्यां स्थावरो नामयोगः, ज्ञेज्यशुक्रैः तनुगतैः विजयो नाम योगः स्यात्। विशुक्रं तं विजयं जीमूतं योगमाहुराचार्याः। बुधगुरुभ्यां लग्नगताभ्यां जीमूतो नामयोग इत्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—लग्न में बुध हो तो नन्द नामक योग, और शुक्र हो तो भद्र नामक योग, तथा बुध शुक्र दोनों हों तो जय नामक योग, बृहस्पति हो तो जीव नामक, बृहस्पति शुक्र दोनों हों तो स्थावर; बुध बृहस्पति शुक्र तीनों हों तो विजय, और बुध बृहस्पति हों तो जीमूत नामक योग होता है ॥ ३ ॥

अथैषां योगानां फलं कथयति—

इति शुभफलयोगाः सप्त सप्तर्षिमुख्यै-
र्मुनिभिरभिहितास्ते जन्मयात्रास्वपि स्युः ।
भजति युवतिरेभिर्भूपसीमन्तिनीत्वं
ग्रहयुतिबलयोगादुत्तराधर्यमस्मिन् ॥ ४ ॥

सं०—इत्येवं सप्तर्षिमुख्यैः विवाहे सप्त शुभफलयोगा अभिहिताः कथिताः । ते योगा जन्मयात्रास्वपि शुभफलाः स्युः । एभिर्नन्दादिभिर्योगैः युवतिः भूपसीमन्तिनीत्वं राजपत्नीत्वं भजति । अस्मिन् शुभफले ग्रहयुति-बलयोगात् उत्तराधर्यं आधिक्यं न्यूनत्वं च स्यात् ॥ ४ ॥

भा०—इस प्रकार विवाह में सप्तर्षि आदि मुनीन्द्रों ने ७ शुभ फलयोग कहे हैं। ये योग जन्म और यात्रा समय में भी शुभप्रद होते हैं। इन योगों से स्त्री राजपत्नी होती है। इन योगों के फल में ग्रहों के योग और बल के अनुसार अधिकता और न्यूनता समझनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथाऽशुभयोगान् कथयति—

दिनकररुधिराभ्यां व्यालपातालवक्त्रौ
क्षय इति रविपुत्रे सैंहिकेये तमस्कम् ।
तनुगृहयुजि केतावन्तकस्तेषु शोक-
व्यसनविधनताभिस्तप्यते पङ्कजाक्षी ॥ ५ ॥

सं०—दिनकर-रुधिराभ्यां (रवि-कुजाभ्यां) तनुगृहयुक्ताभ्यां 'क्रमेण' व्याल-पातालवक्त्रौ योगौ भवतः । रविणा व्यालः, कुजेन पातालवक्त्र इत्यर्थः । रविपुत्रे तनुगृहयुजि (लग्नगते) क्षय इति योगः, सैंहिकेये (राहौ) लग्नगते 'अन्तक' इति योगः स्यात् । तेषु व्यालादियोगेषु पङ्कजाक्षी स्त्री शोकव्यसनविधनताभिः तप्यते ॥ ५ ॥

भा०—लग्न में सूर्य हो तो व्याल, मङ्गल हो तो पातालवक्त्र, शनि हो तो क्षय, राहु हो तो तमस्क, केतु हो तो अन्तक नामक योग होता है। इन योगों में विवाहिता कुमारी शोक, दुःख, और निर्धनता से तप्त रहती है ॥ ५ ॥

अथान्यौ दुष्टयोगौ कथयति—

तनुतुहिनमरीच्योरङ्गनाखेटदृष्टौ
चरगृहगतयोः स्यात्कान्तयुग्मं कुमार्याः ।
अविदिशि बलिनश्चेद्यायिनो युग्म इन्दा-
वशुभदृशमुपेते कन्यका त्वन्यकाम्या ॥ ६ ॥

सं०—तनुतुहिनमरीच्योः लग्नचन्द्रयोः चरगृहगतयोः अङ्गनाखेटदृष्टौ (शुक्र-दृष्टौ) सत्यां चेद् यायिनो ग्रहाः बलिनोऽविदिशि (विदिशोऽन्याऽविदिक् तस्यां, लग्न-चतुर्थ-सप्तम-दशमेष्वित्यर्थः) स्थितास्तदा—कुमार्याः कन्यायाः कान्तयुग्मं पतिद्वयं भवति । तथा इन्दौ चन्द्रे युग्मे समराशौ स्थिते अशुभदृशमुपेते सति कन्यकाऽन्यकाम्या (अन्यः काम्यो यस्याः सा तथोक्ता) भवति ॥ ६ ॥

भा०—लग्न और चन्द्रमा दोनों चर राशि में हों उन पर शुक्र की दृष्टि हो और यायी ग्रह बलवान् होकर केन्द्र में हों तो कन्या को दो पति होते हैं । तथा चन्द्रमा समराशि में हो उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो कन्या दूसरे पुरुष की कामना करनेवाली होती है ॥ ६ ॥

विशेष—"यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते ।
प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे ॥"

वि०—इस वचन से लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम भाव पूर्वादि दिशाओं में और शेष भाव विदिशा में पड़ते हैं । तथा—यायी, स्थायी और आक्रन्द तीन प्रकार के ग्रह होते हैं । यथा वराह—

रविराक्रन्दो मध्ये पौरः पूर्वे परे स्थितो यायी ।
पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं शीतांशुराक्रन्दः ।
केतुकुजराहुशुक्रा यायिन इत्याहुराचार्याः ॥"

अर्थात् सूर्य मध्य (चतुर्थ दशमभाव) में आक्रन्द, प्रथम लग्न में स्थायी तथा सप्तम में यायी होता है । और बुध गुरु शनि स्थायी, चन्द्रमा आक्रन्द, तथा केतु, मंगल, राहु, शुक्र ये यायी ग्रह हैं । शौनक मुनि ने इन दोनों योग को स्पष्ट कहा है—

"लग्नेन्दू चरराशौ केन्द्रस्था यायिनो यदा बलिनः ।
योषिद्ग्रहसंदृष्ट्या पतिद्वयं गच्छते नारी ॥"

तथा—"क्रूरग्रहसंदृष्टे समर्क्षगे शशिनि भजति पतिमन्यम् ।
स्त्रीणामन्यत्र गते सौम्यैर्दृष्टे शुभं भवति ॥" इति ॥६॥

अथ पुंस्त्रीग्रहबलवशेन फलान्तरमाह—

नरः प्रियो नीरजलोचनानां नरग्रहैरुत्कटकान्तिवीर्य्यैः ।
नारी नृणां चित्तहरा स्वभोगैर्नारीनभोगैर्बलशालिभिस्तु ॥ ७ ॥

सं०—नरग्रहैः (गुरुरविकुजैः) उत्कटकान्तिवीर्य्यैः (अतिप्रकाशबलयुतैः) सद्भिः नीरजलोचनानां कन्यानां नरो भर्ता प्रियो भवति । नारीनभोगैः स्त्रीग्रहैः (चन्द्रशुक्रैः पूज्यार्थत्वाद्बहुवचनम्) बलशालिभिस्तु नारी स्त्री स्वभोगैः नृणां स्वामिनां चित्तहरा प्रिया भवति ॥ ७ ॥

भा०—विवाह समय पुरुषग्रह (गुरु-रवि-मंगल) बली हों तो स्त्री को स्वामी प्रिय होता है । तथा स्त्री ग्रह बली हो तो स्वामी को स्त्री प्रिया होती है ॥ ७ ॥

अथ पतिश्वशुरादीनां फलान्तराण्याह—

पतिरस्तपतिर्विरोचनः श्वशुरस्तत्प्रमदा मदग्रहः ।
अबला बलिनो दिशन्त्यमी सुदृशां तेष्वशुभं शुभं क्रमात् ॥ ८ ॥

सं०—सुदृशां (सुलोचनस्त्रीणां) अस्तपतिः सप्तमेशः पतिः, विरोचनः सूर्यः श्वशुरः, मदग्रहः शुक्रः तत्प्रमदा (श्वशुरस्त्री श्वश्रूः) भवति । अमी पत्यादिग्रहाः अबला बलिनः क्रमात् तेषु पत्यादिषु अशुभं शुभं च दिशन्ति, अबला अशुभं, बलिनः शुभं दिशन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

भा०—सप्तमेश स्त्रियों का स्वामी, सूर्य श्वशुर और शुक्र सास है । ये निर्बल हों तो पति आदि के अशुभफल और बली हों तो शुभफल देते हैं ॥ ८ ॥

शशिसूर्यसुतावनीसुतैररिनीचास्तगतैः करग्रहे ।
अपि तन्वधिपेन तप्यते निरपत्या नियतं नितम्बिनी ॥ ९ ॥

सं०—करग्रहे विवाहे शशिसूर्यसुतावनीसुतैः अरिनीचास्तगतैः तन्वधिपेन लग्नेशेनापि अरिनीचास्तगतेन नितम्बिनी स्त्री निरपत्या सन्तानरहिता सती तप्यते । इदं फलं सप्तमभावे हीनबले सति बोध्यं यतः शौनकः—"लग्नपतौ रिपुभवने नीचे वा रविसुतावनिजैः । बलरहिते च द्यूने स्त्रीणां न भवन्त्यपत्यानि ॥" इति ॥ ९ ॥

भा०—चन्द्र, रवि भौम और लग्नेश ये शत्रुगृह, नीचराशि, में वा अस्त हों तथा सप्तमभाव निर्बल हो तो स्त्री सन्तानहीन होकर दुःखिनी होती है ॥ ९ ॥

लोकेषु काचिद्रीतिः शास्त्रविरुद्धास्ति तां निन्दति—

कवेस्तृतीयस्य शुभाय रेखा लग्नं नभस्थो न भनक्ति भौमः ।
तद्वद्व्यये सौरिरपीति रीतिर्जनेषु जागर्तितरां कुतस्त्या ॥१०॥

सं०—तृतीयस्य कवेः शुक्रस्य शुभाय रेखा भवति, नभस्थो दशमस्थो भौमो लग्नं न भनक्ति, तद्वत् सौरिः शनिः अपि व्यये लग्नं न भनक्ति, इतीयं रीतिः जनेषु लोकेषु कुतस्त्या जागर्तितराम् ? इति न जाने, अर्थादियं रीतिः शास्त्रविरुद्धा निर्मूलास्तीति ॥ १० ॥

भा०—लोक में तृतीय शुक्र की शुभार्थ रेखा होती है । तथा दशम मंगल और द्वादश शनि भी लग्न के भङ्गकारक नहीं माने जाते, यह रीति कहाँ से आकर अत्यन्त प्रसिद्ध हुई ? इसका पता नहीं अर्थात् इस लोकरीति का प्रमाण शास्त्र में नहीं मिलता है ॥ १० ॥

अथ जामित्रदोषे विशेषमाह—

उशना गुरुरिन्दुनन्दनः शशिजामित्रगपापतापहृत् ।
नवपञ्चमकेन्द्रमित्रभप्रणयी पुष्टदृशा विधुं स्पृशन् ॥११॥

सं०—उशनाः शुक्रः, गुरुः, इन्दुनन्दनो बुधः नवपञ्चमकेन्द्रमित्रभप्रणयी (नवमपञ्चमकेन्द्रस्थो मित्रराशिगतः) पुष्टदृशा विधुं चन्द्रं स्पृशन् पश्यन् शशिजामित्रगपापतापहृद् (पापकृतचन्द्रजामित्रदोषापहारको) भवति । अत्र केन्द्रं सप्तमरहितं ज्ञेयं तथा चोक्तम्—"हरिजदिवसचन्द्रात् सप्तमक्रूरदोषक्षयकृदमरपूज्यः सोमपुत्रः सितो वा । उदयहिबुकधर्मव्योमपुत्रालयस्थो यदि च सकलदृष्ट्यालोकयेच्छीतरश्मिम् ॥"

भा०—शुक्र, बृहस्पति, बुध इनमें से एक भी ९।५।१।४।१० भावगत होकर मित्र की राशि में हो और पूर्णदृष्टि से चन्द्रमा को देखता हो तो चन्द्रमा से सप्तमस्थ पापग्रह जनित दोष को नाश कर देता है ॥ ११ ॥

हिमरश्मिनवांशकात् खलो यदि खेटः शरसायकांशके ।
अयमन्यगुणैर्न हन्यते निविडैरप्युपसर्गडम्बरः ॥ १२ ॥

सं०—हिमरश्मिनवांशकात् खलः खेटो यदि शरसायकांशके पञ्च-

पञ्चाशत्तमे नवांशके स्यात् तदा अयं उपसर्गडम्बरः पूर्णजामित्रदोषाडम्बरः निविडैः सम्पूर्णैरप्यन्यगुणैर्न हन्यते ॥ १२ ॥

भा०—जिस नवांश में चन्द्रमा हो उससे ५५ वाँ नवांश में यदि पापग्रह हो तो यह पूर्णजामित्रदोष परिपूर्ण भी अन्य गुणों से नाश नहीं होता है ॥१२॥

अथोक्तयोगानां सफलत्वमफलत्वं चाह—

मोघाः शिखिदग्धबीजवद्योगाः केपि शरीरधारिणः ।
दृढगूढफलोदयाः परे पर्णाकीर्णहुताशराशिवत् ॥१३॥

सं०—केऽपि योगाः शरीरधारिणः (प्रत्यक्षा अपि) शिखिदग्धबीजवत् मोघाः (विफलाः) भवन्ति । परे (अन्ये केचित् योगाः) पर्णाकीर्णहुताशराशिवत् (पर्णाच्छादिताग्निसमूह इव) दृढगूढफलोदयाः (दृढगूढः प्राच्छन्नः फलोदयो येषां ते तथोक्ताः) भवन्ति । सबलग्रहसम्बन्धियोगाः सफलाः, विबलग्रहसम्बन्धियोगा विफला भवन्तीत्यर्थः ॥ १३ ॥

भा०—जैसे अग्नि से जले हुए बीज विफल होते हैं उसी प्रकार कितने (निर्बल ग्रहों के) योग प्रत्यक्ष रहने पर भी विफल होते हैं। तथा—कितने योग 'जो देखने में नहीं भी आते' वे तृणपत्रादि से आच्छादित अग्नि के समान अवश्यही फलप्रद होते हैं। अर्थात् सबल ग्रहों का अल्पयोग भी फलप्रद, और निर्बल ग्रहों का संपूर्णयोग भी विफल होता है ॥ १३ ॥

इति यः प्रतिकूलकारकग्रहभावांशनिवेशदृष्टिभिः ।
तन्वादिफलेषु दत्तदृक्स प्राप्नोत्यवतंसतां सताम् ॥१४॥

सं०—इत्युपरोक्तप्रकारेण यः 'दैवज्ञः' प्रतिकूलकारकग्रहभावांशनिवेशदृष्टिभिः तन्वादिफलेषु दत्तदृक् भवति स 'दैवज्ञः' सतां अवतंसतां भूषणत्वं प्राप्नोति ॥१४॥

भा०—इस प्रकार जो ज्योतिषी प्रतिकूलकारक (दुष्ट फलप्रद) ग्रह, भाव, नवांश आदि के स्थानों पर दृष्टि देकर लग्नादि भावों का फल देखता है 'अर्थात् ग्रहादिकों का बलाबल विचार कर जो फल कहता है' वह विद्वानों में भूषण अर्थात् पूज्य समझा जाता है ॥१४॥

अथ मिश्राध्यायः ।

तत्रादौ कीदृशं वरं कीदृशीं कन्यां च वृणुयादित्याह—

उल्लिख्य सामुद्रिकलक्षणानि वरः कुमारीं वृणुयान्निमित्तैः ।
एवं कुमारी वरमप्युदर्को न ह्येकधारं निरधारि धीरैः ॥१॥

सं०—वरःनिमित्तैः वक्ष्यमाणैः कृत्वा सामुद्रिकलक्षणानि उल्लिख्य सम्यग्ज्ञात्वा कुमारीं वृणुयात् । कुमारी कन्यापि एवं निमित्तैः सामुद्रिकलक्षणानि उल्लिख्य वरं वृणुयात् वरयेत् । हि यतः धीरैः गर्गादिमुनिभिः उदर्कः भविष्यकालः एकधा अरं न निरधारि न निर्धारित इत्यर्थः ॥ १ ॥

भा०—वर को चाहिये कि—वक्ष्यमाणनिमित्तों से, सामुद्रिकलक्षणों को समझ कर कन्या का वरण करे । इसी प्रकार कन्या भी वर का वरण करे । क्योंकि गर्गादिमुनियों ने उत्तरकालीन फल एकही प्रकार का नहीं कहा है, अर्थात् भविष्य फल अनेक प्रकार से होते हैं ॥ १ ॥

स्वप्नो निमित्तं शकुनाः स्वकर्म शरीरमागन्तुकमद्भुतानि ।
दोषाभिचारग्रहचारकालकाम्यानि चैवं विविधः फलाध्वा ॥ २ ॥

सं०—स्वप्नः निद्राविशेषोद्भवं ज्ञानं, निमित्तानि क्षुतादीनि, शकुनाः पूर्णकलशादयः, स्वकर्म प्राक्तनस्वकर्मविपाकः, शरीरं सामुद्रिकलक्षणादिकम्, आगन्तुकं भविष्यवस्तु जातकादि, अद्भुतानि त्रिविधोत्पाताः, दोषाः कफपित्तवातोद्भवास्तेषामभिचारः प्रचारः, ग्रहचारः स्वरसाधनादिकः, कालः संवत्सरादिः, काम्यानि ऐहिकानि पुरुषचेष्टादीनि एवं विविधः नानाप्रकारकः फलाध्वा फलमार्गोऽस्ति ॥ २ ॥

भा०—स्वप्न, क्षुत आदि निमित्त, शकुन, पूर्वार्जित कर्म, शरीरलक्षण, आगन्तुक (जातक), दिव्य, भौम, आन्तरिक्ष उत्पात, कफ वातादिजन्य शारीरिक दोष का प्रचार, ग्रहों का चार, संवत्सर, मास, दिन, लग्न आदि काल और काम्य (ऐहिक चेष्टादि) इत्यादि फल कहने के मार्ग अनेक हैं । अर्थात् अनेक मुनियों ने अनेक प्रकार से फल कहे हैं ॥ यथा—शौनक के वाक्य—

"तिथिकरणर्क्षनिशाकर-विलग्नपरिकल्पनामयं गर्गः ।
पाणिग्रहणेषु फलं वदन्ति यवना वसिष्ठश्च ॥
ग्रहराशिगोचरभवं जातकविहितं च देवलः प्राह ।

शकुनिरुतज्ञाः शकुनैर्निमित्तकुशला निमित्तैश्च ॥
कर्मसमुत्थं चान्ये कुलदेशस्त्रीस्वभावमपरे तु ।
इच्छन्त्यन्ये मुनयः कालविशेषाद् विशेषफलमिति ॥" २ ॥

अथ यत्नादेव फलप्राप्तिरित्याह—

प्राक्कर्म बीजं सलिलानिलोर्वीसंस्कारवत्कर्म विधीयमानम् ।
शोषाय पोषाय च तस्य तस्मात्सदा सदाचारवतां न हानिः ॥ ३ ॥

सं०—प्राक्कर्म (पूर्वजन्मकृतं यत् सदसत् कर्म) तस्य (प्राक्कर्मणः) विधीयमानं (सम्प्रति क्रियमाणं) कर्म उद्योगः शोषाय नाशाय, पोषाय पुष्ट्यै च भवति । किं वत् बीजं सलिलानिलोर्वी संस्कारवत् । यथा सद्बीजं जलवायुभूमिसंस्कारेण उत्पद्यते वर्धते च तथैव प्राक्कर्म (प्रारब्धं) विधीयमानेन कर्मणा उद्योगेन वर्धतेऽन्यथा क्षीयते तद्वदित्यर्थः । तस्मात् कारणात् सदा चारवतां (श्रुतिस्मृतिविहितकर्म सदाचारस्तद्वतां) जनानां कदाचिदपि हानिर्न स्यात् । एतेन स्वप्नादयोऽपि विलोकनीया एवेति सिद्धम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे जल, वायु और पृथ्वी के संस्कार से बीज की उत्पत्ति और वृद्धि होती है, उसी प्रकार वर्तमान समय में क्रियमाण कर्म (उद्योग) पूर्वकृत कर्म का शोषक (नाश करनेवाला) और पोषक (बढ़ानेवाला) होता है । अर्थात् उद्योग से ही शुभ फल का लाभ, और अशुभ फल का नाश हो सकता है अन्यथा नहीं । इसलिये सदाचारवान् (श्रुति स्मृति विहित धर्म के पालन करने वालों) की कभी हानि नहीं हो सकती है ॥ ३ ॥

उद्योगेन विना प्राक्तनकर्म न फलतीत्याह—

फलेद्यदि प्राक्तनमेव तत्किं कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः ।
श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा ॥

सं०—यदि प्राक्तनं पूर्वकृतं कर्मैव फलेत् तत् तदा कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः किं स्यात् ? । तथा श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा प्रवृत्ता ? । अतः सत्फललाभाय, असत् फलनाशाय चावश्यमेव प्रयत्नः कर्तव्य एवेति ॥ ४ ॥

भा०—अगर प्रारब्ध ही फलीभूत होता तो कृषि वाणिज्य आदि के उपायों में लोग यत्न क्यों करते हैं, लोग ही नहीं, श्रुति स्मृति भी लोगों के निषेध और

विधि कर्मों में क्यों प्रवृत्त है। इससे सिद्ध हुआ कि शुभफल लाभ और पापफल नाश के लिये सर्वदा यत्नशील रहना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ सप्तभिः श्लोकैः स्वस्थजनस्यारिष्टलक्षणान्याह—

छायां विधोर्न ध्रुवमृक्षमालामालोकयेद्यो न च मातृचक्रम्।
खण्डम्पदं यस्य च कर्दमादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुम्बी ॥५॥

सं०—यो जनः विधोश्छायां कलङ्कलेखां न आलोकयेत्, ध्रुवं, ऋक्षमालां नक्षत्रमण्डलम्, मातृचक्रं मातृसंज्ञकताराणां चक्रं मण्डलम् नालोकयेत्, यस्य जनस्य च कर्दमादौ खण्डं पदं भवति, यस्य कफः च्युतः सन् अम्बुचुम्बी मज्जति—'अमुं एवंभूतं नेदिष्ठदिष्टान्तं (आसन्नमृत्युं) वरं कुमार्याः प्रदानाय आर्या न वृणीरन् न वरयेयुः' इत्येकादशश्लोकेन सर्वत्रान्वयः ॥ ५ ॥

भा०—जो चन्द्रविम्बस्थ कलङ्कचिन्ह को न देखे, तथा ध्रुव, नक्षत्रमण्डल, मातृतारकामण्डल न देखे, जिसका पैर कीचर आदि में खण्डित देखने में आवे, तथा जल में कफ फेंकने से डूब जाय इस प्रकार का आसन्न मृत्युवाला वर का कन्यादान के लिये नहीं वरण करना चाहिये ॥ ५ ॥

उरः पुरः शुष्यति यस्य चार्द्रं न मान्ति तिस्रोऽङ्गुलयश्च वक्त्रे।
स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रिक्तमुखः खगो वा ॥६॥
नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वा सुभुक्तोपि धृतिं विधत्ते।
निश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीः कृशःस्थवीयानपि योप्यकस्मात् ॥७॥

सं०—यस्य च आर्द्रं उरः हृदयं 'अन्यस्मादङ्गात्' पुरःप्रथमं शुष्यति, यस्य च वक्त्रे मुखे तिस्रोऽगुलयः मध्यमातर्जन्यनामिकाः न मान्ति (न विशन्ति), यस्य स्नातस्य मूर्धनि मस्तके धूमवल्ली धूमशिखा जायते, अपि वा मूर्धनि मस्तके रिक्तमुखःखगो निलीयते, यश्च आकीर्णकर्णः अङ्गुल्यादिनाच्छादितकर्णपुटः सन् घोषं अन्तःशब्दं न शृणुयात्; यो वा सुभुक्तः सन्नपि धृतिं तृप्तिं न धत्ते, यश्च अकस्मात् सुतरां निःश्रीः, सुतरां वा सुश्रीः, यश्च कृशो हि अकस्मात् स्थवीयान्, स्थवीयानपि अकस्मात् कृशः 'अमुं वरं न वृणीरन्' ॥ ६–७ ॥

भा०—जिसका शरीर भीजने पर सब अङ्गों से पहिले हृदय सूखे, जिसके

मुख में तर्जनी मध्यमा और अनामिका ये तीनों अङ्गुली साथ जोड़कर न समाय, स्नान करने पर जिसके मस्तक से धूमशिखा चले, अथवा जिसके मस्तक पर खाली मुँहवाला पक्षी बैठे, जो कान झापने पर अन्तर का शब्द न सुने, बहुत खाने पर भी जिसकी तृप्ति न हो, जो कान्तिमान अकस्मात् कान्तिरहित वा कान्तिरहित भी कान्तियुक्त हो जाय, जो अकस्मात् दुबला से मोटा वा मोटा से दुबला हो जाय, इस प्रकार के वरों का बरण नहीं करना चाहिये ॥६—७॥

अतीव तुच्छं बहु चात्त्यहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ ।
अप्यंगुलिक्रान्तविलोचनान्तो न मेचकं चान्द्रकमीक्षते यः ॥८॥
मध्येललाटं मणिबन्धधारी न चाल्पिकां पश्यति यः कलावीम् ।
अहेतुकं यः शवगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमन्तितमूर्धजो वा ॥९॥

सं०—यश्च अहेतोः ज्वरादिकारणं विनैव अतीवतुच्छं अतिशयाल्पं अत्ति, यश्चाहेतोः भस्मकादिरोगहेतुं विनापि बहु अत्यधिकं अत्ति भक्षयति, यश्च सदसत्प्रवृत्तौ अतीतसात्म्यः त्यक्तस्वभावगुणः, यश्च अङ्गुलिक्रान्तविलोचनान्तः सन्नपि चान्द्रकं मेचकं मेचकवर्णवद्भासमानं नेक्षते । यश्च मध्येललाटं ललाटस्य मध्ये मणिबन्धधारी अल्पिकां कलावीं (मणिबन्धाधो बलयधारणस्थानं) न पश्यति, यश्च अहेतुकं शवगन्धिगात्रः, यश्च वा सर्वत्र सीमन्तितमूर्धजः (सीमन्तिता मूर्धजाः केशा यस्य स तथोक्तः) अमुं वरं न वृणीरन् ॥ ८–९ ॥

भा०—जो ज्वर आदि बिना कारण के बहुत थोड़ा भोजन करे, वा भस्मक आदि रोग बिना बहुत खाय, उचित अनुचित में जिसका स्वभाव बदल जाय 'अर्थात् जो सर्वदा उचित करनेवाला हो वह अनुचित करने लगे, वा सर्वदा अनुचित करनेवाला उचित करने लगे; जो अङ्गुलियों से नेत्रप्रान्त को झाँपकर मेचकवर्ण चान्द्रक (खद्योतवत् भासमान) न देखे, जो ललाट मध्य में मणिबन्ध (तलहथ के नीचे का गाँठ) को रखकर दुबला पहुँचा को न देखे, वा बिना कारण मुर्दे के समान गन्ध शरीर में हो जावै, अथवा जिसके केश में सब जगह सीमन्त (ककवा से बनाई रेखा के समान रेखायें) हो जायँ, इस प्रकार के वरों का वरण नहीं करना चाहिये ॥ ८–९ ॥

अपि क्षरद्रोमनखः शरीरात् स्वप्ने स्ववद्वामविलोचनो वा ।
निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥१०॥

आक्षिप्यमाणो दिशि दक्षिणस्यां जागर्ति यानेऽधिकृतः खरादौ ।
नेदिष्ठदिष्टान्तममुं कुमार्या नाऽऽर्याः प्रदानाय वरं वृणीरन् ॥११॥

सं०—अपि वा यः स्वप्ने शरीरात् क्षरद्रोमनखः, वा स्रवद्वामविलोचनः, वा अमानुषं (मनुष्यभिन्नं) सत्त्वं जन्तुं निरीक्षते, अपिवा विस्रस्तनासानयनश्रुतिः वा खरादौ यानेऽधिकृतः दक्षिणस्यां दिशि आक्षिप्यमाणः सन् जागर्ति, अमुं एवंभूतं नेदिष्ठदिष्टान्तं (नेदिष्ठः अत्यासन्नो नेदिष्टो मृत्युर्यस्य तं तथोक्तं) वरं कुमार्याः कन्यकायाः प्रदानाय आर्याः श्रेष्ठा ज्ञातारो न वृणीरन् (न वरयेयुः) ॥१०–११॥

भा०—जिसके स्वप्न में शरीर से रोम, नह वा वामनेत्र गिर पड़े, वा मनुष्य से भिन्न (व्याघ्र आदि) जन्तुओं को देखे वा नाक, नेत्र, कान ये शिथिल हो जाय, अथवा गदहे आदि सवारियों पर आरूढ़ होकर दक्षिण दिशा में प्रेरित होकर जाता हुआ जाग पड़े, इस प्रकार के समीप मृत्युवाले वरों का आर्य पुरुष कन्यादान के लिये वरण न करै ॥१०–११॥

अथ छायालक्षणेनारिष्टसम्भवं कथयति—

छायां निरीक्ष्य क्षणमन्तरिक्षं पश्यन्न यो निश्चलनेत्रपातः ।
शुभ्राभ्रसच्छायमिह स्वकायं पश्येत्स नश्येद्विकृतौ विकारः ॥१२॥

सं०—यश्च निश्चलनेत्रपातः स्थिरदृष्टिः सन् छायां निरीक्ष्य क्षणं अन्तरिक्षं पश्यन् स्वकायं शुभ्राभ्रसच्छायं न पश्येत् स नश्येत् नाशं गच्छेत् । इहाऽस्मिन् स्वशरीरे विकृतौ दृष्टायां विकारः स्यात् ॥१२॥

भा०—जो मनुष्य स्थिर दृष्टि से अपनी छाया को देखकर क्षणभर आकाश को देखता हुआ फिर अपने शरीर को स्वच्छ मेघ के समान न देखै वह आसन्न कालही में मर जाता है । तथा अपने जिस अंग को विकृत रूप में देखै उस अंग में शीघ्र विकार हो जाता है ॥१२॥

अथ सत्पुरुषलक्षणान्याह—

प्रदक्षिणावर्तशरीररोमा वृषस्वनः फेनिलमूत्रपातः ।
नात्यल्पपार्ष्णिर्मनसा गभीरो धीरोन्नतारम्भरुचिर्यशस्वी ॥१३॥
स्निग्धेक्षणत्वङ्नखदन्तकेशो युवा सुवासाः परिवीतचेष्टः ।
न स्त्रीमुखो निष्प्रभशान्तमूर्तिर्न चातिकृष्णोक्षणतारको वा ॥१४॥

औचित्यचारी शुचिरिङ्गितज्ञो विशालहस्ताननबाहुवक्षाः ।
सर्वोपि सत्त्वाकृतिमान्कुलीनः कन्याप्रदानाय वरो न रोगी ॥१५॥

सं०—प्रदक्षिणावर्तशरीररोमा, वृषस्वनः (वृषस्य स्वन इव स्वनो यस्य सः) फेनिलमूत्रपातः (फेनिलः फेनसहितो मूत्रपातो यस्य सः), नात्यल्पपार्ष्णिः (न अत्यल्पः पार्ष्णिर्गुल्फाधोभागो यस्य स तथोक्तः), मनसा गभीरो गम्भीरः, धीरोन्नतारम्भरुचिः (धीरा उन्नता चारम्भेषु रुचिर्यस्य स तथोक्तः) यशस्वी, स्निग्धेक्षणत्वङ्नखदन्तकेशः, युवा, सुवासाः, परिवीतचेष्टः (परिवीता संवृता चेष्टा यस्य स तथोक्तः), न स्त्रीमुखः (स्त्रीमुखमिव मुखं यस्य नेत्यर्थः), निप्रभशान्तमूर्तिः (नितरां प्रभा कान्तिर्यस्यास्तथाभूता शान्ता मूर्तिर्यस्य स तथोक्तः), वा नातिकृष्णेक्षणतारकः (अतिकृष्णे ईक्षणतारके यस्य न स्तः तथाभूतः), औचित्यचारी (योग्याचरणशीलः) शुचिः पवित्रहृदयः, इङ्गितज्ञः परचेष्टितज्ञः, विशालहस्ताननबाहुवक्षाः, एवं सर्वोऽपि सर्वलक्षणयुक्तोऽपि सत्त्वाकृतिमान् सात्त्विकप्रकृतिः, कुलीनः सुकुलोद्भवः, नरोगी (रोगरहितः) एवं भूतो वरः कन्याप्रदानाय योग्यो भवति ॥१३-१४-१५॥

भा०—शरीर में सव्य आवर्त (दहिने तरफ से घुमा हुआ) रोमवाला, वृष के समान गंभीर शब्दवाला, जिसके मूत्र त्याग करने से फेन उठता हो, जिसकी एँड़ी (पैर का पिछला हिस्सा) अत्यल्प न हो, मन गम्भीर, जिसका सन्देह रहित और उच्च कार्यारम्भ में रुचि हो, संसार में सुयश हो, चिक्कन दृष्टि, त्वचा, नख, दाँत और केश हो, युवावस्था वाला, सुन्दर वस्त्र रखने वाला, जो संवृत चेष्टा वाला हो, जिसका स्त्री के सदृश मुँह न हो, अत्यन्त कान्ति युत शान्त मूर्ति हो, आँख की तारे (पुतली) अत्यन्त कृष्णवर्ण न हो, उचित आचरण करने वाला, पवित्र; दूसरे की चेष्टा को जानने वाला, जिसका हाथ, मुख, बाहु और वक्षःस्थल (हृदय) विशाल हो इन लक्षणों से युक्त रहने पर भी कुलीन और रोगहीन हो तो इस प्रकार का वर कन्यादान करने के लिये योग्य है ॥१३-१५॥

एवं वरलक्षणान्युक्त्वा कन्यालक्षणानि कथयति—

श्मश्रुश्यामोन्नतोष्ठी पृथुकरचरणा ह्स्वरुक्षाग्रकेशा
निःशौचा रोमशांगी कृशकुटिलचलत्क्रूरसच्छद्मदृष्टिः ।

वामावर्ता विशालोन्नतविकटनटद्भ्रूललाटा स्पृशन्ती
नोर्वीमन्त्यांगुलिभ्यामनियतबहुभुग्गेहिनी देहिनी रुक् ॥१६॥

सं०—श्मश्रुश्यामोन्नतोष्ठी (श्मश्रुभिः श्यामौ उन्नतौ च ओष्ठौ यस्याः सा), पृथुकरचरणा, ह्रस्वारुणाग्रकेशा; निःशौचा शौचरहिता, रोमशाङ्गी, कृशकुटिलचलत्क्रूरसच्छद्मदृष्टिः (कृशा कुटिला चलन्ती क्रूरा सच्छद्मा कपटसहिता दृष्टिर्यस्याः सा) वामावर्ता (अप्रदक्षिण-रोमावर्ता), विशालोन्नतविकटनटद्भ्रूललाटा (विशालं विस्तीर्णं उन्नतञ्च विकटनटद्भ्रूललाटं यस्याः सा तथोक्ता विकटनटद्भ्रूः विशालोन्नतललाटा चेत्यर्थः), अन्त्याङ्गुलीभ्यां कनिष्ठिकाभ्यां उर्वीं भूमिं न स्पृशन्ती, अनियतबहुभुक् (अनियतं बहु भुंक्ते सा तथोक्ता) एवं भूता गेहिनी भार्या देहिनी शरीरधारिणी रुक् साक्षाद्रोग एवेत्यर्थः ॥ १६ ॥

भा०—जिस का दाढ़ी मूछ से श्याम वर्ण और ऊँचा ओठ हो, बड़ा बड़ा हाथ पैर हो, छोटे छोटे और रूखे अग्रभाग वाले केश हो, जो शौचहीन हो, बहुत रोम-युक्त शरीरवाली हो, जिसकी छोटी छोटी, टेढ़ी, चञ्चल और कपट भरी आँख हो, वामावर्त रोम हो, बड़ा विशाल और ऊँचा ललाट विचित्र रूप से नाचती भ्रू हो, चलते समय दोनों पैर की कनिष्ठा (कनगुड़िया) अङ्गुली पृथ्वी को स्पर्श नहीं करती हो, जो अनियम रूप से बहुत खानेवाली हो इस प्रकार की पत्नी मानो साक्षात् शरीर धारण किया हुआ रोग ही है ॥१६॥

या स्फिग्ललाटोदरलम्बिनी सा स्यात्कान्तकान्तानुजताहन्त्री ।
नितम्बिनी स्वल्पनितम्बगुह्या द्रुह्यात्पतिं दीर्घगला कुलघ्नी ॥१७॥

सं०—या नितम्बिनी स्त्री स्फिग्ललाटोदरलम्बिनी (स्फिग्ललाटो-दरैर्लम्बते इति तथोक्ता) सा क्रमेण कान्त-कान्तानुज-तातहन्त्री स्यात् । या स्वल्पनितम्बगुह्या (नितम्बः कटिपश्चाद्भागः, गुह्यो योनिः, स्वल्पे नितम्बगुह्ये यस्याः सा तथोक्ता) सा पतिं द्रुह्यात्, या दीर्घगला सा कुलघ्नी (पतिकुलघातिनी) भवति ॥ १७ ॥

भा०—दीर्घ नितम्ब (चूतर) वाली पति को, दीर्घ ललाटवाली देवर को और दीर्घ उदरवाली श्वशुर को नाश करती है। तथा अत्यल्प योनिवाली स्त्री पति-कुल को नाश करनेवाली होती है ॥१७॥

निःस्वातिह्रस्वा धमनी पुरंध्री प्रायेण तत्रातिपृथुः प्रचण्डा ।

कपोलकूपा हसितेऽप्यशीला कूर्मोदरी दुःखदरी दुरात्मा ॥१८॥

सं०—धमनौ शिरायां अतिह्रस्वा पुरन्ध्री निःस्वा धनहीना भवति। तत्र 'धमनौ' या अतिपृथुः सा प्रचण्डा उग्रस्वभावा भवति। या हसिते कपोलकूपा सा अशीला भवति। या च कूर्मोदरी सा दुःखदरी दुरात्मा दुष्टस्वभावा च भवति ॥१८॥

भा०—जिसकी शिरायें (शरीर की नाड़ियाँ) अत्यन्त कृश हो वह स्त्री निर्धना होती, और शिरायें मोटी मोटी हों तो अत्यन्त उग्र स्वभाव वाली होती है। जिसके हँसने से कपोल (गाल) में गहिरा हो जाय वह दुराचारिणी होती है। और कछुए के समान उदरवाली स्त्री दुःख की खान और दुष्ट स्वभाव वाली होती है ॥१८॥

अथ हस्तपदगतरेखाफलानि कथयति—

रेखाभिरंगुष्ठतलेऽङ्गनानां पुंस्त्रीप्रसूतिर्विपुलाल्पिकाभिः।
अच्छिन्नभिन्नाभिरखण्डमायुः खण्डन्तदन्याभिरमूभिरस्याः ॥१९॥

सं०—अङ्गनानां स्त्रीणां अङ्गुष्ठतले कराङ्गुष्ठमूलाधोभागे विपुलाऽल्पिकाभिः रेखाभिः क्रमेण पुंस्त्रीप्रसूतिर्वाच्या (विपुलरेखातुल्याः पुत्र-सन्ततिः, अल्परेखातुल्याः कन्यासन्ततिरित्यर्थः) अमूभिः रेखाभिः अच्छिन्नभिन्नाभिः अस्याः प्रसूतेः (सन्ततेः) अखण्डं पूर्णं आयुः, तदन्याभिः (छिन्नभिन्नाभिः रेखाभिः) अस्याः प्रसूतेः (पुंस्त्रीसन्ततेः) खण्डं स्वल्पं आयुर्वाच्यम् ॥१९॥

भा०—स्त्रियों के अंगुष्ठमूल से नीचे जितनी रेखायें हों उनमें बड़ी रेखा के तुल्य पुत्र और छोटी रेखा के तुल्य कन्या सन्तान समझना। वे रेखायें अछिन्न और अभिन्न (सम्पूर्ण पुष्ट) हो तो सन्तान की पूर्ण आयु, यदि कटी फटी रेखायें हों तो सन्तान की अल्पायु होती है ॥१९॥

एका तिर्यक्तर्जनीं याति रेखा तर्जन्यंगुष्ठान्तराले तदन्या।
ते द्वे स्यातामायुरैश्वर्यरेखे तत्सौन्दर्य्ये सुन्दरत्वं तयोः स्यात् ॥२०॥

सं०—'या' एका रेखा तर्जनीं प्रति तिर्यग् याति, तदन्या तद्भिन्ना तर्जन्यङ्गुष्ठान्तराले याति, ते द्वे क्रमेण आयु-रैश्वर्यरेखे स्याताम्। तत्सौन्दर्ये तयो रेखयोः शोभनत्वे तयोरायुरैश्वर्ययोः सुन्दरत्वं शुभत्वं स्यात्।

भा०—हाथ के मध्य में एक तिरछी रेखा तर्जनी अंगुली की तरफ जाती है वह आयुर्दाय रेखा, और तर्जनी तथा अंगूठा के मध्य में जो दूसरी तिरछी रेखा होती है वह ऐश्वर्य रेखा कहाती है, ये दोनों रेखायें सुन्दर हों पुष्ट हों तो आयु और ऐश्वर्य भी पूर्ण होते हैं ॥२०॥

ऐश्वर्यरेखाशिखरेण मूलाद्युनक्ति याऽसौ पितृवंशरेखा ।
नीरन्ध्रबन्धा गृहबन्धनाय बंहीयसी वंशविवर्धनाय ॥२१॥

सं०—या रेखा मूलात् हस्तमूलात् निर्गता ऐश्वर्यरेखायाःशिखरेणाग्रेण युनक्ति मिलति, असौ पितृवंशरेखा स्यात् । सा नीरन्ध्रबन्धा (निश्छिद्रा निर्बन्धा) गृहबन्धनाय (गृहं गृहिणी तस्या बन्धनं प्रेम तस्मै तथोक्ताय) भवति । तथा बंहीयसी (अतिशयेन बहुला) सा रेखा वंशविवर्धनाय भवति ॥ २१ ॥

भा०—हस्तमूल (मणिबन्ध से) निकली हुई और ऐश्वर्य रेखा के अग्र से मिली हुई रेखा पितृवंश रेखा कहलाती है । यदि उसमें छिद्र और गाँठ नहीं हो तो वह घर में बन्धन (स्त्रियों में प्रेम) कराने वाली होती है । यदि वही रेखा अत्यन्त पुष्ट हो तो वंशवृद्धिकारिणी होती है ॥२१॥

कनिष्ठिकाजीवितरेखयोः स्यान्मध्ये मिथः कान्तकलत्ररेखा ।
अपत्यरीत्या करभे परस्मिन् भवन्ति सांमातुरवर्गरेखाः ॥२२॥

सं०—कनिष्ठिकाजीवितरेखयोः (कनिष्ठिकामूलायुष्यरेखयोः) मध्ये (करभप्रदेशे) मिथः कान्तकलत्ररेखा (स्त्रीकरे पतिरेखा, पुरुषकरे कलत्ररेखा) स्यात् । करभे परस्मिन् शेषभागे सांमातुरवर्गरेखाः (सांमातुराः सोदरास्तेषां रेखाः) अपत्यरीत्या (अपत्यरेखानुसारेण) ज्ञेया ॥२२॥

भा०—कनिष्ठामूल और आयु रेखा के मध्य (करभप्रदेश) में स्त्री के हाथ में पति रेखा, और पुरुष के हाथ में स्त्री रेखा होती है । तथा शेष करभ भाग (आयु रेखा और मणिबन्ध के मध्यस्थान) में सोदर रेखा रहती है उन रेखाओं को सन्तान रेखा के अनुसार समझना । अर्थात् जैसे—अँगूठे के नीचे बड़ी रेखा से पुत्र और छोटी से कन्या के शुभाशुभ समझा जाता है, उसी प्रकार करभप्रदेशस्थ बड़ी रेखा से भाई और छोटी रेखा से बहिन के शुभाशुभ समझना चाहिये ॥२२॥

अनामिकामूलविभूषणं या पुण्यस्य रेखा तदवाप्तिहेतुः ।

निःसीमसीमन्तितपञ्चशाखा कस्योर्ध्वरेखा न करोति राज्यम् २३

सं०—या रेखा अनामिकामूलविभूषणं सा पुण्यस्य रेखा तदवाप्तिहेतुः (तस्य पुण्यस्य अवाप्तिः प्राप्तिस्तस्या हेतुः) भवति । तथा निःसीमसीमन्तितपञ्चशाखा (निर्गता सीमा यस्यासौ निःसीमः, निस्सीमः सीमन्तितः पञ्चशाखो हस्तो यया सा तथोक्ता) ऊर्ध्वरेखा कस्य जनस्य राज्यं न करोति ? अपि तु सर्वस्यैव राज्यं करोत्येवेत्यर्थः ।। २३ ।।

भा०—अनामिका अंगुली मूल को विभूषित करने वाली (अर्थात् अनामिका के मूल और आयुरेखा पर्यन्त खड़ी) रेखा पुण्य रेखा कहाती है, वह पुण्य कराने वाली होती है । और जो रेखा मणिबन्ध से निकल कर समस्त हस्ततल को विभक्त करती हुई ऊपर को जाती है वह ऊर्ध्व रेखा किस को राज्य नहीं कराती, अर्थात् इस प्रकार की ऊर्ध्व रेखा हाथ में हो तो अवश्य राज्यप्रद होती है ॥२३॥

अथ सर्वासां रेखाणां साधारण्येन स्फुटफलप्रदत्वमाह—

अरूक्षगम्भीरमनोहराभी रेखाभिरन्तर्मधुपिङ्गलाभिः ।
न चातिबह्वीभिरवामवामेष्वंगेषु पुंस्त्रीफलयोः स्फुटत्वम् ।।२४।।

सं०—अवामवामेषु (पुरुषस्य अवामेषु दक्षिणेषु, स्त्रिया वामेषु) अङ्गेषु अरूक्षगम्भीरमनोहराभिः, अन्तर्मधुपिङ्गलाभिः न चातिबह्वीभिः (नातिसंकीर्णाभिः) रेखाभिः पुंस्त्रीफलयोः स्फुटत्वं स्यात् ।। २४ ।।

भा०—अत्यन्त चिकनी गहिरी देखने में मनोहर और मधु समान पिङ्गलवर्ण की पृथक्-पृथक् रेखा पुरुष के दहिने अंग और स्त्री के वाम अंग में हो तो स्पष्ट रूप से शुभ फल मिलता है ॥२४॥

अथ राजचिह्नानि कथयति—

सरोजश्रीवृक्षध्वजगजतिमिस्तम्भकलश-
स्रगादर्शच्छत्रांकुशकुलिशभृङ्गारगिरिभिः ।
रथाश्वश्रीवत्सव्यजनयवयूपप्रभृतिभि-
र्नरा नार्यो राज्यं दधति पदपाणिप्रणयिभिः ।।२५।।

सं०—सरोज-श्री-वृक्ष-ध्वज-गज-तिमि-स्तम्भ-कलश-स्रगादर्श-च्छत्रा-ङ्कुश-कुलिश-भृङ्गार-गिरिभिः रथाऽश्व-श्रीवत्स-व्यजन-यव-यूपप्रभृतिभिः पद-पाणिप्रणयिभिः नराः, नार्यश्च, राज्यं दधति धारयन्ति ।। २५ ।।

भा०—पुरुष अथवा स्त्री के पैर वा हाथ में यदि कमल, विल्व वृक्ष, ध्वजा, हस्ती, मछली, स्तम्भ, कलश, माला, ऐना, छत्र, अंकुश, वज्र, भृंगार (सुवर्ण जलपात्र), पर्वत, रथ, घोड़ा, श्रीवत्स (हृदय में रोम की दक्षिणावर्त भौंरी), पङ्खा, जौ, यज्ञस्तम्भ, इत्यादि चिह्न हों तो अवश्य राज्य मिलता है ॥२५॥

अथ मुख्यशुभलक्षणान्याह—

अर्चितं वचनमुन्नतं मनो निर्विशेषसुखदं वपुर्दृशाम् ।
अस्ति चेदघपराङ्मुखा मतिर्लक्षणैः किमपरैर्नृयोषिताम् ॥२६॥

सं०—चेद् यदि वचनं अर्चितं पूजितं 'लोकैः स्वीकृत'मित्यर्थः । मनः उन्नतम्, वपुः शरीरं दृशां चक्षुषां निर्विशेषसुखदं अत्यन्तसुखप्रदम्, मतिः अघपराङ्मुखा (पापात्परावृत्ता) तर्हि नृयोषितां (नरनारीणां) अपरैः लक्षणैः किं ? न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः ॥ २६ ॥

भा०—यदि बचन आदरणीय, मन उच्च, शरीर नेत्रों को अत्यन्त सुखप्रद तथा बुद्धि पापकर्म से निवृत्त हों तो अन्य शुभ लक्षणों से क्या प्रयोजन ? अर्थात् इन्हीं चार सुलक्षणों से सब सिद्ध होता है ॥२६॥

अथ निमित्तानि कथयति तत्र पक्षिचेष्टितान्याह —

वरस्य कन्यावरणे वरेण्यो दुर्गेव यो दक्षिणचेष्टितश्च ।
अदक्षिणं चेष्टितमिष्टमाहुस्तयोः कुमारी वृणुयाद्वरं चेत् ॥२७॥

सं०—वरस्य कन्यावरणे कन्यावरणकाले यः 'पुंसंज्ञितः पक्षी' दक्षिणचेष्टितः (दक्षिणाङ्गे कण्डूयनादिभिश्चेष्टितः) स दुर्गा कृष्णचीटिका इव वरेण्यः शुभप्रदो भवति, स्त्रीसंज्ञितपक्षिषु दुर्गापि दक्षिणचेष्टितैव शुभप्रदा भवतीत्यर्थः । अनयोर्वामचेष्टितं न शुभप्रदमित्यर्थत एव सिद्ध्यति । तथा यदि कुमारी वरं वृणुयात् तदा तयोः पुंसञ्ज्ञितपक्षिदुर्गयोः अदक्षिणं चेष्टितं वामाङ्गचेष्टितं इष्टं शुभप्रदं आहुः 'मुनीद्रा' इति शेषः ॥ २७ ॥

भा०—वर जिस समय कन्या का वरण करै उस समय पुंलिंग पक्षी और स्त्रीलिंग में दुर्गा (कृष्णचीटिका) पक्षी ये दोनों यदि दक्षिण अङ्ग से (खुजलाना आदि कोई) चेष्टा करते हों तो शुभप्रद समझना । अर्थात् इन दोनों के वाम चेष्टा कन्यावरण में अशुभ है । तथा जिस समय कन्या ही वर का वरण करै उस समय उक्त दोनों पक्षियों का वाम चेष्टा ही शुभप्रद है । अर्थात् दक्षिण चेष्टा अशुभ है ॥

अथ शुनश्चेष्टितं कथयति—

शुनो गतिर्दक्षिणेष्टा कुमारी यत्र कांक्षिणी ।
अदक्षिणा यत्र तत्र वर एतां वुवूर्षति ॥२८॥

सं०—यत्र यस्मिन् समये कुमारी कांक्षिणी भवति (वरं वरीतुमिच्छतीत्यर्थः) तस्मिन् समये शुनः कुक्कुरस्य दक्षिणा (स्वदक्षिणभागगता) गतिः इष्टा शुभप्रदा स्यात् । यत्र वरः एतां कुमारीं वुवूर्षति वरीतुमिच्छति तत्र अदक्षिणा शुनोर्गतिरिष्टा भवति ॥ २८ ॥

भा०—जिस समय कन्या वरका वरण करे उस समय दाहिने भाग होकर कुकर का चलना शुभ है। और जिस समय वर कन्या का वरण करे उस समय वाम भाग कुकर का जाना शुभ होता है। अर्थात् इससे विपरीत अशुभ समझना।

अथोपश्रुतिशकुनं कथयति—

आरोप्याक्षतपूरिते गणपतिम्प्रस्थादिपात्रे शनैः
संमार्जन्यववेष्टिते युवतयस्तिस्रः सकन्या निशि ।
निर्याता रजकादिवेश्मसु करे कृत्वा तमभ्यर्चितं
यां वाचं शृणुयुस्तदर्थसदृशी सिद्धिः किलोपश्रुतौ ॥२९॥

सं०—अक्षतपूरिते तण्डुलपूर्णे संमार्जन्यववेष्टिते प्रस्थादिपात्रे 'प्रस्थकुडवादिमानपात्रे' गणपतिं गणेशमूर्तिं आरोप्य, अभ्यर्चितं संपूजितं तं गणपतिं करे कृत्वा सकन्याः कन्यया सहितास्तिस्रः युवतयः सुवासिन्यः निशि रात्रौ रजकादिवेश्मसु निर्याताः तत्र यां वाचं शृणुयुः तदर्थसदृशी सिद्धिः उपश्रुतौ ज्ञेया किलेति निश्चयार्थकम् ॥ २९ ॥

भा०—चावल से पूर्ण प्रस्थ आदि (सेर, पौआ, आदि) अन्न नापने के पात्र को संमार्जिनी (बढ़नी) से ढककर उस पर गणेशजी की प्रतिमा रखकर उनकी पूजाकर और उन्हें हाथ में लेकर रात्रि के समय कन्यासहित तीन सुवासिनी स्त्री धोबी आदि जातियों के घर के समीप जाकर चुपके से उस घर में रहनेवाले का शब्द सुने, वहाँ जिस प्रकार का वचन सुनने में आवे उसी प्रकार अपने चिन्तित कार्य की सिद्धि समझना। अर्थात् यदि वहाँ शुभवचन सुनने आवे तो शुभ, तथा अशुभवचन सुनने में आवे तो अशुभ समझना ॥ २९ ॥

अथ कन्यावरणनक्षत्राणि कुलाचारपालनं चाह—

श्रुतित्रिपूर्वावसुवह्निमित्रविश्वानिलर्क्षे वरणं कुमार्याः ।

तच्चावमन्येत न चेतसापि यदाचरेयुः स्वकुलोक्तमार्याः ॥३०॥

सं०—श्रुतित्रिपूर्वावसुवह्निमित्रविश्वानिलर्क्षे कुमार्याः कन्यायाः वरणं शुभं स्यात्। तथा आर्याः मान्यवृद्धाः कुलोक्तं निजकुलपरंपरागतं यत् आचरेयुः तच्चेतसापि मनसापि नावमन्येत तदवमानना न कार्येत्यर्थः।

भा०—श्रवण, तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, कृत्तिका, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, स्वाती इन नक्षत्रों में कन्या का वरण करना शुभ है। और माननीय वृद्ध लोग अपने कुल परंपरागत जो आचार करते आये हों उसका अवहेलना मनसे भी नहीं करना चाहिये। अर्थात् कुलका आचार भी अवश्य करना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ वेदिकानिर्माणं कथयति—

वेदिकां विरचयेत्तथा यथा स्यादियं प्रविशतश्च दक्षिणे।
स्युर्जनाश्रययवोप्तिवर्णिकाः षण्णवत्रिदिवसेषु नाग्रतः ॥३१॥

सं०—विवाहार्थे—वेदिकां तथा विरचयेत् यथेयं गृहं प्रविशतः पुरुषस्य दक्षिणे भागे भवेत्। अग्रतः विवाहदिनात् पूर्वं षण्नवत्रिदिवसेषु जनाश्रय-यवोप्ति-वर्णिका न स्युः (न भवेयुः)। पश्चात् मण्डपाद्युद्वासनमपि-एतन्मितेषु दिनेषु नो कार्यम्। अन्यव्यवस्था आचारतो ज्ञेया ॥३१॥

भा०—विवाह के लिये वेदी इस प्रकार बनाना चाहिये जिससे वह गृह (मण्डप) में प्रवेश करते समय दाहिने भाग पड़े। और विवाहदिन से पूर्व, षष्ठ, नवम, और तृतीय दिन में मण्डप, अङ्कुरार्पणार्थ जौ का बोना और लीपना पोतना रंग लगाना आदि न करना चाहिये। अर्थात् विवाह दिन से पीछे ३, ६ और ९ दिनों में मण्डप आदि का उद्वासन (उत्थापन) भी न करना चाहिये। और विशेष व्यवस्था आचार से समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ मातृकापूजनं कर्तव्यमित्याह—

कन्यकोक्तविधिवत्पुलोमजापूजनं सयुवतिः समाचरेत्।
घ्नन्ति चाशुभमविघ्नमातरो मातृयज्ञकुलकर्मशान्तयः ॥३२॥

सं०—सयुवतिः (सुवासिनीस्त्रीसहिता) कन्यका उक्तविधिवत् शौनकादिप्रतिपादितरीत्या पुलोमजापूजनं इन्द्राण्याराधनं समाचरेत्। तथा मातृयज्ञ-कुलकर्मशान्तयः (मातरो गौर्याद्याः, मातृमातामह्याद्याश्च तासां यज्ञः पूजनं, कुलाचारवशेन शान्तयश्च) अविघ्नमातरः (निर्विघ्नं

निष्पादिताः) अशुभं घ्नन्ति नाशयन्ति । अतः शच्याः, मातृकाणां, कुल देवतानां चाराधनमवश्यमेव कर्तव्यमिति तात्पर्यम् ॥३२॥

भा०—सुवासिनी स्त्री सहित कन्या शौनकादिकथित विधि से शची की पूजा करै । और गौरी आदि षोडशमातृका तथा माता मातामही आदि माताओं का यज्ञ (पूजनादि) तथा कुलाचारानुसारशान्ति (कुलदेवतापूजनादि) ये विघ्नों को नाश कर देते हैं । इसलिये इन कर्मों को मंगलकार्यों में अवश्य करना चाहिये ॥

अथ वधूवरप्रश्नाध्यायः ।

तत्रादौ वधूप्रश्नमाह—

कर्मायसूनुसहजस्मरगो मृगाङ्कः
स्त्रीपुम्ससंगमयिता यदि जीवदृष्टः ।
स्वर्क्षाणि शुक्रशशिदृष्टयुतानि कन्या-
लब्ध्यै वधूगृहदृकाणनवांशका वा ॥ १ ॥

सं०—प्रश्नलग्नात् कर्मायसूनुसहजस्मरगो मृगाङ्कश्चन्द्रो यदि जीव-दृष्टस्तदा स्त्रीपुंससंगमयिता वधूवरसंगमकारको भवतीत्यर्थः । शुक्रशशि-दृष्टयुतानि स्वर्क्षाणि (शुक्रशशिनोः स्वगृहाणि) लग्नगतानि, वा वधूगृह-दृकाणनवांशकाः (वधूगृहाणि समराशयस्तेषां दृकाणनवांशकाः लग्नगताः) कन्यालब्ध्यै कन्यालाभाय भवन्ति ॥ १ ॥

भा०—वरकन्यालाभार्थं प्रश्नलग्न से १०, ११, ५, ३, ७ इन स्थानों में चन्द्रमा हो और बृहस्पति से दृष्ट हो तो वधूवरसंगमकारक होता है । अर्थात् वर के लिये कन्या और कन्या के लिये वर मिलता है । तथा शुक्र और चन्द्रमा की राशि (वृष, तुला, कर्क ये) लग्न हो और शुक्र चन्द्रमा से दृष्ट युत हो, वा समराशि (वृष आदि) के द्रेष्काण, नवांश लग्नगत हो और शुक्रचन्द्र से दृष्ट युत हो तो कन्यालाभ होता है ॥ १ ॥

युग्मर्क्षगौ शशिसितौ द्विपदाङ्गनांशे
स्यातान्तदाप्तिपिशुनौ तनुमीक्षमाणौ ।
नारीनवांशमुदितं खचराः परेपि
स्त्रैणर्क्षगा विलसदुज्ज्वलवीर्यभाजः ॥ २ ॥

सं०—शशिसितौ (चन्द्रशुक्रौ) युग्मर्क्षगौ द्विपदाङ्गनांशे द्विपदस्त्रीराशिनवांशे) तनुं लग्नं ईक्षमाणौ स्यातां तदा तदाप्तिपिशुनौ (कन्यालाभसूचकौ) भवेताम् । वा उदितं लग्नगतं नारीनवांशं वृषादिसमराशिनवांशकं ईक्षमाणौ शशिसितौ कन्याप्राप्तिसूचकौ भवेताम् । परेऽन्येऽपि खचरा ग्रहाः स्त्रैणर्क्षगाः समराशिगताः विलसदुज्ज्वलवीर्यभाजः तनुमीक्षमाणाः कन्याप्तिसूचका भवन्ति ॥ २ ॥

भा०—शुक्र और चन्द्रमा समराशि में स्थित कन्या नवांश में होकर लग्न को देखते हों तो कन्यालाभ के सूचक होते हैं। अथवा शुक्र चन्द्रमा यदि लग्नगत समराशिके नवांश को देखते हों तो भी कन्या लाभसूचक होते हैं। दूसरे ग्रह भी प्रकाशमान विम्ब और बल से युक्त होकर लग्नगत समराशि के नवांश को देखते हों तो भी कन्याप्राप्ति सूचक होते हैं। अर्थात् इन योगों में वर के लिये कन्या का लाभ होता है ॥ २ ॥

अथ कन्याया वरप्राप्तिप्रश्नमाह—

एवं नरा नरदृकाणनवांशदृग्भिः
पुंखेचरैरुपनमन्ति नितम्बिनीनाम् ।
यल्लिङ्गिबालकपशुप्रभृतीङ्गितं स्यात्
प्रश्नक्षणे तदु तथैव वधूवरस्य ॥३॥

सं०—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण पुंखेचरैः (रवि-कुज-गुरुभिः) नरदृकाणनवांशदृग्भिः नितम्बिनीनां (स्त्रीणां) नरा उपनमन्ति उपलब्धा भवन्तीत्यर्थः । लग्नगतान् विषमराशिदृकाणनवांशान् पुंग्रहाः पश्यन्ति चेत् तदा कन्याया वरलाभः स्यादित्यर्थः । अथ निमित्तं कथयति - प्रश्नक्षणे लिङ्गिवालक-पशुप्रभृतीनां यत् इङ्गितं तद् वधूवरस्य तथैव उ निश्चयेन भवति ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार स्त्रीग्रह (चन्द्र शुक्र) और समराशिनवांश से वर को कन्यालाभ कहा गया है उसी प्रकार—पुरुषग्रह विषमराशि में हों विषमराशि लग्नगत दृकाण नवांश को देखते हों तो कन्या को वर की प्राप्ति होती है। अब निमित्त कहते हैं कि—प्रश्न के समय लिङ्गी (कापालिक आदि) बालक तथा पशु आदि जन्तुओं की जिस प्रकार चेष्टा हो उसी प्रकार उस कन्यावर को भी समझना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ प्रश्नसमये शुभाशुभयोगानाह—

प्रश्नोदयादमृतरोचिषि षण्मृतिस्थे मूर्तौ च तत्र मदनस्पृशि चावनेये ।
तन्वस्तयोरशुभसङ्गतयोर्वरस्य नाशः क्रमाद्वसुमहीमुनिसंमितेऽब्दे ॥

सं०—प्रश्नोदयात् प्रश्नलग्नात् अमृतरोचिषि चन्द्रे षण्मृतिस्थे षष्ठाष्टमस्थे इत्येको योगः, तथा च तत्र तस्मिन् चन्द्रे मूर्तौ लग्नगते, आवनेये भौमे मदनस्पृशि सप्तमस्थिते सति द्वितीयोगः, तथा तन्वस्तयोः लग्नसप्तमयोः अशुभसङ्गतयोः पापग्रहसहितयोः इति तृतीयो योगः, एषु योगेषु क्रमाद् वसु-मही-मुनिसंमितेऽब्दे वरस्य नाशः स्यात् ॥ ४ ॥

भा०—प्रश्नलग्न से चन्द्रमा ६ या ८ स्थान में हो, वा चन्द्रमा लग्न में और मङ्गल सप्तम में हो, अथवा लग्न और सप्तम दोनों में पापग्रह हों तो इन तीनों योग में क्रम से विवाह के बाद ८ वर्ष, १ वर्ष, और ७ वर्ष में वर का नाश होता है ॥ ४ ॥

जामित्रगौ विधुसितौ विधवामसाध्वीं
सौरिः कुजः सुरमहेज्यबुधौ धनाढ्याम् ।
दीर्घायुषं वपुषि सुप्रसवां प्रसूतौ
स्त्रीजातकोक्तमखिलं खलु चिन्त्यमत्र ॥५॥

सं०—जामित्रगौ सप्तमस्थौ विधुसितौ वधूं विधवां, सौरिः शनिः कुजश्च असाध्वीं दुःशीलां, सुरमहेज्यबुधौ धनाढ्यां धनयुक्तां कुरुतः । वपुषि लग्ने स्थितौ सुरमहेज्यबुधौ दीर्घायुषं चिरजीविनीं, प्रसूतौ पञ्चमस्थाने स्थितौ गुरुबुधौ सुप्रसवां सुसन्ततिं कुरुतः । स्त्रीजातकोक्तं अखिलमपि शुभाशुभं अत्रास्मिन् प्रश्नलग्ने विवाहलग्ने च चिन्त्यम् ॥ ५ ॥

भा०—प्रश्नलग्न से सप्तमस्थ चन्द्रमा और शुक्र स्त्री को विधवा, शनि और मंगल दुराचारिणी तथा गुरु और बुध धनवती बनाते हैं । लग्न में बुध और बृहस्पति स्त्री को चिरजीविनी, पञ्चम स्थान में बुध गुरु हो तो शुभसन्तानवाली स्त्री होती है । स्त्री जातकोक्त समस्त शुभाशुभ योग प्रश्न और विवाहलग्न में विचारना चाहिए ॥ ५ ॥

वि०—विवाहदीपिकाटीकाकारने—

"यदि पृच्छकलग्नस्थौ भृगुसौम्यौ जीवनीं कुरुतः ।
पञ्चसंस्थौ पुत्राढ्‌ जामित्रगतौ विपुलधनाम् ॥"

इस शौनकवचन के विरोधभय से "कुजोऽसुरमहेज्यबुधौ" इस प्रकार का पाठ बनाया है। उस प्रकार से भी शुक्र के फल में पुनरुक्ति दोष आता है। क्योंकि यहाँ आचार्य केशवार्क ने सप्तमस्थ सूर्येतर सब ग्रहों का फल कहा है ॥५॥

अथ दलनकण्डनादिकार्येषु शुभकालं कथयति—

भतिथिवारफलानि पदे पदे विरचितानि परैरिति नोचिरे ।
सकलकर्मसु यस्तदुपक्रमः स हि विवाहभ एव शुभे दिने ॥ ६ ॥

सं०—सकलकर्मसु (दलनकण्डनादिसमस्तविवाहाङ्गकृत्येषु) परैरन्याचार्यैः भतिथिवारफलानि पदे पदे विरचितानि, इत्येवं प्रकारेणात्र नोचिरेऽस्माभिर्नोक्तानीत्यर्थः । हि यतः यस्तदुपक्रमः (तेषां दलनकण्डनादिसकलकर्मणां उपक्रमः) स शुभदिने विष्टिमहापातादिदोषरहितदिवसे विवाहभे विवाहविहितनक्षत्र एव स्यात् । तथा च श्रीपतिः—"विवाहकृत्यं निखिलं विवाहभे विलोकयेन्नैव बलं हिमद्युतेः" इत्यादि ॥ ६ ॥

भा०—विवाह के अङ्गभूत समस्त कार्यों में नक्षत्र, तिथि और वार का फल पद पदपर दूसरे आचार्यों ने कहा है, उस प्रकार मैं यहाँ पृथक् पृथक् नहीं कहा है। क्योंकि उन विवाहाङ्गभूत-दलन-कण्डन आदि सब कार्यों का आरम्भ भद्रादि दोष से रहित निषिद्धेतर दिनों में विवाहविहित नक्षत्रों में ही शुभ होता है ॥६॥

अथास्य ग्रन्थस्य वैशिष्ट्यं कथयति—

प्रायो विवाहपटलं तटलम्बमानस्तंबोपमं न सहते नयचालनानि ।
वृन्दावने परमतातपपीड्यमानवृन्दावनेनुरमतामिहसन्मतिश्रीः ॥

सं०—प्रायो बाहुल्येन तटलम्बमानस्तम्बोपमं (तटे नदीतीरे लम्बमानः स्तम्बस्तृणगुच्छस्तेनोपमीयते इति तथोक्तं) विवाहपटलं विवाहफलसमूहः नयचालनानि (नयेन तर्केण चालनानि) न सहते, आगमसिद्धत्वात् कारणात् चालयितुं न शक्यते इत्यर्थः । यथा नदीतटस्थतृणगुच्छश्चालनेनाधः पतति तद्वद्विवाहपटलमपीति भावः । अतः परमतातपपीड्यमानवृन्दावने (परमतमेवातपस्तेनपीड्यमानानां वृन्दस्य अवनं रक्षणं यस्मात् तस्मिन् तथोक्ते) इहास्मिन् विवाहवृन्दावने (मदुक्ते एतन्नाम्नि ग्रन्थे) सन्मतिश्रीः (सतां मतिः बुद्धिस्तस्याः श्रीः सम्पद्) अनुरमतां यथेच्छं क्रीडतामित्यर्थः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे नदी के किनारे पर लटकता हुआ तृणों का गुच्छा चालन नहीं सह सकता है, उसी प्रकार विवाह के फल समूह भी तर्क से चालन 'अन्यथाकरण' नहीं सह सकता है। अर्थात् आर्षोक्त आगमसिद्ध विवाहफल में तर्क से अन्यथा अर्थ करना उचित नहीं है। इसलिये परमत रूप आतप से पीड्यमान लोगों का अवन (रक्षण) है जिससे ऐसे वृन्दावन नामक इस ग्रन्थ में पण्डितों की बुद्धिसम्पत्ति यथेच्छ क्रीड़ा करे ॥ ७ ॥

अथ स्ववंशवर्णनाध्यायः ।

अभूद्भरद्वाजमहर्षिवंशे विश्वावतंसे श्रुतितत्त्ववेदी ।
औदीच्यचारित्रपथप्रवर्ती जनार्दनो याज्ञिकचक्रवर्ती ॥१॥

सं०—विश्वावतंसे भरद्वाजमहर्षिवंशे श्रुतितत्त्ववेदी औदीच्यचारित्रपथप्रवर्ती याज्ञिकचक्रवर्ती जनार्दनोऽभूत् ॥ १ ॥

भा०—विश्व के भूषण स्वरूप (वन्दनीय) भारद्वाज महर्षि के गोत्र में वेदों के तत्त्वार्थ जानने वाले औदीच्य ब्राह्मणों के आचार के मार्गप्रवर्तक यज्ञ करनेवालों में अत्यन्त श्रेष्ठ जनार्दन नाम के पण्डित हुए ॥ १ ॥

अस्ति श्रियादित्य इति स्म तस्य सूनुः श्रियादित्य इव द्वितीयः ।
त्रिस्कन्धपारङ्गतरङ्गमल्लस्तदात्मजो राणग इत्युदीर्यें ॥ २ ॥

सं० —तस्य जनार्दनस्य सूनुः पुत्रः श्रियादित्य इत्यस्ति स्म। कथंभूतः— श्रिया दीप्त्या द्वितीय आदित्यः सूर्य इव। तदात्मजः (तस्य श्रियादित्यस्यात्मजः) उदीर्यें कथनीये राणगः इति आसीत्। कथंभूतः त्रिस्कन्धपारंगतरङ्गमल्लः त्रिस्कन्धज्योतिर्विदां युद्धभूमौ युद्धकुशल इत्यर्थः ॥ २ ॥

भा०—उन (जनार्दन) के दीप्तियों से दूसरे सूर्य के समान श्रियादित्य नामक पुत्र हुए। तथा श्रियादित्य के पुत्र त्रिस्कन्ध ज्योतिःशास्त्रवेत्ताओं के युद्ध-में मल्लस्वरूप राणग नामक हुए ॥ २ ॥

श्रीकेशवः सुकविरध्ययनाध्वनीनव्यूहान्प्रतर्पयितुमर्थपयःप्रवाहैः ।
दैवज्ञराणगसुतः सुतपःश्रयेस्मिन्वृन्दावने मुनिगवीनिवहं दुदोह ॥

सं०—दैवज्ञराणगसुतः सुकविः श्रीकेशवः अध्ययनाध्वनीनव्यूहान् (अध्ययनमार्गज्ञानिसमूहान्) अर्थपयःप्रवाहैः प्रतर्पयितुं अस्मिन् सुतपःश्रये (सुपुण्यजनसेव्यमाने) वृन्दावने मुनिगवीनिवहं दुदोह दुग्धवान् ॥ ३ ॥

भा०—दैवज्ञ राणग के पुत्र श्रीकेशवार्क (मैंने) अध्ययनमार्गगामिजनों को अर्थरूपदुग्ध के प्रवाहों से तृप्ति करने के लिये पुण्यवानों से सेव्यमान इस वृन्दावन में मुनियों के वचनरूप गायों को दूहा है। अर्थात् जैसे—तपस्वियों से सेव्यमान वन में मार्ग चलने से खिन्न पथिकों की तृप्ति के लिये गायें दुही जाती हैं, उसी प्रकार दूसरे ग्रन्थों के अध्ययनमार्ग में थके हुए लोगों की तृप्ति के लिए मैंने भी सुपुण्यजनों से सेवनीय इस वृन्दावन में मुनिवचनों का सारांश संग्रह कर दिया है ॥ ३ ॥

अबहुदृष्टधियः कियदप्यदः पदगभीरमधीरभिरंस्यते ।
विशदशास्त्रधियां त्विदमेकदा श्रुतिगतं रसनासु विवृत्स्यति ॥ ४ ॥

सं०—अबहुदृष्टधियः (अल्पज्ञस्य) अदः (एतत् मत्कृतं गुणविशिष्टमपि विवाहवृन्दावनं) कियत्? न किञ्चिदित्यर्थः। तथा—अधीः (निर्बुद्धिस्तु) पदगभीरं (पदैर्गम्भीरं) दृष्ट्वाऽभिरंस्यते (आनन्दं प्राप्स्यतीत्यर्थः)। तथा—विशदशास्त्रधियां (विशदा अत्यधिका शास्त्रेषु धीर्येषां तेषां) तु एकदा (एकवारं) श्रुतिगतं कर्णप्राप्तं इदं (विवाहवृन्दावनं) रसनासु जिह्वासु विवृत्स्यते विवृद्धिं प्राप्स्यतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

भा०—जिन्होंने बहुत शास्त्रों को नहीं देखा उन (अल्पज्ञों) के लिये यह गुणविशिष्टभी विवाहवृन्दावन है तो क्या? कुछ भी नहीं अर्थात् वे लोग इसे तुच्छ समझेंगे। तथा जो अबुद्धि (कुछ भी शास्त्र नहीं देखे) हैं वे इसे पदों से गंभीर समझकर ही आनन्द को प्राप्त होंगे। तथा शास्त्रों में विशदबुद्धिवालों के तो एकबार कर्णगोचर होते ही यह (विवाहवृन्दावन) उनकी जिह्वापर जाकर वृद्धि को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

अथ लग्नशुद्ध्यध्यायः ।

तत्र विवाहविहितनक्षत्राणि—

ध्रुवानुराधामृगमूलरेवतीकरं मघास्वातिरदूषणो गणः ।
रवेरमीना मकरादिषड्गृही करग्रहे मङ्गलकृन्मृगीदृशाम् ॥१॥

सं०—श्लोकोऽयं नक्षत्रशुद्धिप्रकरणे व्याख्यात एव द्रष्टव्यं पृ० २ ॥१॥

भा०—इस श्लोक की टीका नक्षत्रशुद्धि प्रकरण में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ नक्षत्रशुद्धिं त्रिभिः श्लोकैः कथयति—

क्रूरोज्झितं द्विः शशिभोगतोर्वाक्तदाप्यमाढ्यं च शुभं न भं स्यात् ।
त्र्यष्टार्कविंशं च कुजार्किभानुस्वर्भानुतः सत्रिविधाद्भुतं च ॥२॥

सं०—क्रूरोज्झितं पापग्रहेण त्यक्तं, तदाप्यं (पापग्रहेण प्राप्यं) तेन पापेन आढ्यं च भं नक्षत्रं, तथा कुजाऽर्कि-भानुस्वर्भानुतः क्रमेण त्र्यर्काष्ट-विंशं च भं तथा सत्रिविधाद्भुतं च नक्षत्रं द्विःशशिभोगतो (द्विधाचन्द्रभोगात्) अर्वाक् पूर्वं न शुभं स्यात् । अर्थात् एतत् सर्वं नक्षत्रं द्वितीये चन्द्र-भोगे शुभं भवति ॥ २ ॥

भा०—जिसको पापग्रह छोड़ दिया हो, जिसमें जानेवाला हो और जिसमें वर्तमान हो ये तीनों नक्षत्र, मंगल जिस नक्षत्र में हो उससे तीसरा, शनि से आठवाँ, सूर्य से १२ वाँ और राहु से २० वाँ ये ४ नक्षत्र, तथा त्रिविध उत्पातयुक्त नक्षत्र, ये सब नक्षत्र चन्द्रमा के दोवार भोग करने से पूर्व अशुभ है । अर्थात् यदि चन्द्रमा इन नक्षत्रों को दो वार भोग करले तो शुभ हो जाता है ॥ २ ॥

वैसाहगंशूव्यसमाप्तिसाग्रं संक्रान्तिसाम्यं खलवेधवच्च ।
स्वाशश्रमो भान्वभिरोपुनर्मूश्च रेमृहाणां त्रिभिरुत्तरैः स्यात् ॥३॥

सं०—वै-सा-ह-गं-शू-व्य-समाप्तिसाग्रं (वैधृति-साध्य-हर्षण-गण्ड-शूल-व्यतिपातानां समाप्तौ साग्रं सावशेषं) यन्नक्षत्रम् , सक्रान्तिसाम्यं (क्रान्ति-साम्येन सहितं) यत् , वेधवच्च यन्नक्षत्रं 'तत् शुभं न स्यात्' इति पूर्व-श्लोकेनान्वय । अथ वेधं कथयति—स्वाश-श्रमोभान्वभिरोपुनर्मूः 'एषा-माद्यक्षरोपलक्षितानां नक्षत्राणां मध्ये द्वयोर्द्वयोर्मिथः वेधः । तथा च रे-मृहाणां (रेवती-मृगशिरो-हस्तानां) क्रमेण त्रिभिरुत्तरैः (उत्तरफाल्गुन्युत्तरा-षाढोत्तरभाद्रपदाख्यैः) वेधः स्यात् ॥३॥

भा०—वैधृति, साध्य, हर्षण, गण्ड, शूल, और व्यतीपात इन योगों के अन्त में जो नक्षत्र हो, क्रान्तिसाम्य जिस नक्षत्र में हो और वेध सहित जो नक्षत्र हो ये शुभ नहीं हैं । अब वेध को कहते है-—स्वाती और शतभिषा में, श्रवण और मघा में, भरणी अनुराधा में, अभिजित् रोहिणी में, पुनर्वसु मूल में परस्पर वेध होता है । तथा रेवती, उत्तरफाल्गुनी में, मृगशिरा उत्तराषाढ़ा में, और हस्त उत्तर भाद्रपदा में परस्पर वेध होता है । अर्थात् एक में ग्रह हो तो दूसरा विद्ध समझा जाता है ॥ ३ ॥

एकार्गलः साभिजितीन्दुतोऽर्कः समेऽस्ति योगेष्वशुभाह्वयेषु ।
चतुर्दशं चेन्दुभमर्कधिष्ण्यादितीयमुक्तोद्वहनर्क्षशुद्धिः ॥ ४ ॥

सं०—अशुभाह्वयेषु (वैधृत्यादिषु) योगेषु इन्दुतश्चन्द्रनक्षत्रात् अर्कः सूर्यः साभिजिति समे समसंख्यनक्षत्रेऽस्ति चेत् तदा एकार्गलः स्यात् । तथाऽर्कधिष्ण्यात् चतुर्दशे इन्दुभं चन्द्रनक्षत्रं चाशुभं स्यात् । इत्येवं प्रकारेणेयं उद्वहनर्क्षशुद्धिः विवाहनक्षत्रशुद्धिः उक्ता ॥ ४ ॥

भा०—वैधृति व्यतीपात आदि अशुभ योगों में चन्द्रनक्षत्र से अभिजित् सहित सम संख्यक नक्षत्र में सूर्य हो तो एकार्गल दोष होता है । और सूर्य के नक्षत्र से १४ वाँ चन्द्रमा का नक्षत्र भी हो तो अशुभ है । इस प्रकार यह विवाहनक्षत्र शुद्धि कही गई है ॥ ४ ॥

अथ लग्नशुद्धिं कथयति—

षट्त्र्यायेष्वशुभाः शुभाय निधनद्यूनान्त्यवर्ज्यं परे
त्र्यायार्थेषु शशी मृतौ शनितमःसूर्याः परे भङ्गदाः ।
क्रूरद्यूनवृतान्विते शशितनू अस्ते सितज्ञौ विधु-
र्लग्ने सोमसिताधिपा द्विषि सितः सेन्दुर्विनष्टोंऽशपः ॥५॥

सं०—श्लोकोऽयं ग्रहयोगबलाबलाध्याये व्याख्यात एव । केवलमत्राष्टमस्थाने तमो राहुरपि शुभाय प्रोक्तः ॥ ५ ॥

भा०—इसी ग्रन्थ के प्रकरण १३ श्लोक १ पहला देखो । यहाँ अष्टम स्थान में तम (राहु) भी शुभ कहा गया है इतना ही विशेष है ॥ ५ ॥

अंशाः षट्त्रिनवाद्ग्यस्तदधिपे लग्नांशयोर्द्वादश-
द्वित्र्यष्टासु न लग्नमस्तलवपे तत्सप्तमाभ्यां तथा ।
गण्डान्तेषु च वैधृतावुभयतः संक्रान्तियामद्वये
यामार्धव्यतिपातविष्टिकुलिके मासेह्नि चोनाधिके ॥६॥

सं०—षट्त्रिनवाद्ग्यः कन्यामिथुनधनुस्तुलाः अंशाः लग्ननवांशाः शुभा भवन्ति । तदधिपे (नवांशस्वामिनि) लग्नांशयोः (लग्नात् नवांशाद्वा) द्वादशद्वित्र्यष्टासु स्थिते लग्नं न कार्यम् । अस्तलवपे सप्तमभावांशाधिपे तत्सप्तमाभ्यां (लग्नसप्तमात्-अंशसप्तमाद्वा) तथा तद्वत् द्वादशद्वित्र्यष्टासु स्थिते सति लग्नं न कार्यम् । गण्डान्तेषु, वैधृतौ, उभयतः संक्रान्तियामद्वये,

यामार्धव्यतिपातविष्टिकुलिके, ऊनाधिके मासे, ऊनाधिकेऽह्नि (तिथिक्षये तिथिवृद्धौ चेत्यर्थः) लग्नं न कार्यम् ॥ ६ ॥

भा०—लग्न में नवांस मिथुन, कन्या, धन और तुला प्रशस्त हैं। लग्न से वा नवांश से नवांशस्वामी १२, २, ३, ८ स्थानों में किसी में हो तो वह लग्न नहीं ग्रहण करना। सप्तम भाव के नवांशस्वामी लग्नसप्तम से वा नवांशसप्तम से १२, २, ३, ८ इनमें हो तो लग्न नहीं शुभ है। तथा गण्डान्त, वैधृति, और संक्रान्ति काल से पूर्व तथा पश्चात् २ पहर, यामार्ध, व्यतिपात, भद्रा, कुलिक, क्षयमास, अधिमास, तिथिक्षय, तिथिवृद्धि इनमें भी लग्न अशुभ होता है ॥ ६ ॥

जन्मर्क्षाज्जन्मलग्नान्निधनविधनते अष्टमद्वादशाभ्यां
लग्ने तत्स्वामितत्स्थैरपि वपुषि खगैस्तद्ग्रहांशैश्च ते स्तः।
अस्तेशारेर्नवांशे व्यसनमसुभयं नाडिवेधे षडष्ट-
क्षेत्रेशानामसख्ये दनुजनरगणे वार्कजीवेन्दुशुद्धौ ॥७॥

सं०—जन्मर्क्षात् वा जन्मलग्नात् अष्टमद्वादशाभ्यां राशिभ्यां लग्ने स्थिताभ्यां क्रमेण निधनविधनते (अष्टमराशौ लग्नगते निधनता मृत्युः, द्वादशराशौ लग्नगते विधनता निर्धनत्वं स्यादित्यर्थः) । तत्स्वामितत्स्थैः (तयोः जन्मर्क्षलग्नयोः द्वादशाष्टमस्वामिभिः, तत्रस्थैश्च) खगैः वपुषि लग्ने स्थितैश्च ते (निधनविधनते) स्तः। तथा तद्गृहांशैश्च लग्ने स्थितैः ते निधनविनते भवतः। अस्तेशारेः सप्तमेशरिपोर्नवांशे लग्नस्थे व्यसनं दुःखं स्यात्। नाडिवेधे सति असुभयं प्राणभीतिः स्यात्। षडष्टक्षेत्रेशानां (षट्काष्टके राश्यधिपानां) असख्ये वैरे सति, तथा दनुजनरगणे, वाऽर्कजीवेन्दुशुद्धौ (रविगुरुचन्द्रबलालाभे सति) असुभयं भवति ॥ ७ ॥

भा०—जन्मराशि से वा जन्मलग्न से अष्टमराशि विवाहलग्न में हो तो मरण, और द्वादशराशिलग्न में हो तो निर्धनता, एवं अष्टम द्वादश के स्वामी, वा उन्हीं अष्टमद्वादश में स्थित ग्रह लग्न में पड़े तो भी क्रम से मरण और निर्धनता समझना। वा उन्ही अष्टमद्वादश के नवांश वा तत्रस्थित ग्रहों की राशि के नवांश-लग्न में हों तो भी क्रम से मरण और निर्धनता समझना। सप्तमेश का जो शत्रु हो उसका नवांश लग्न में पड़े तो दुःख, नाडीवेध हो, वा षट्काष्टक होने पर राश्यधिपों में शत्रुता हो, वा नर और राक्षस गण हों, तथा रवि गुरु और चन्द्र की शुद्धि न हो तो प्राणभय होता है॥ ७ ॥

अथाचार्यः स्वदेशपलभां ततश्चरखण्डानि चाह—

वेदा इभाब्धय इयं किल नार्मदी भा
तद्व्यङ्गुलं ह्रसति पुष्यति योजनेन ।
याम्योत्तरे पथि हता दशनागदिग्भि-
रन्त्या पुनर्दहनहृच्चरखण्डकानि ॥ ८ ॥

सं०—वेदा इभाब्धयः (४।४८ चत्वार्यङ्गुलानि, अष्टचत्वारिंशद्व्यंगुलानि च) नार्मदीभा (नर्मदातीरे पलभा) स्यात् । ततो याम्योत्तरे पथि योजनेन एकैकयोजनेन तद्व्यंगुलं (तस्याः पलभायाः एकैकं व्यंगुलं) ह्रसति, पुष्यति वर्धते च । नर्मदातो दक्षिणे देशे देशान्तरयोजनतुल्यव्यंगुलै रहिता उत्तरे सहिता सा स्वदेशे पलभा भवितुमर्हति । अथ सा स्वस्वदेशपलभा त्रिष्ठा दशनागदिग्भिर्हता अन्त्या पुनर्दहनहृत् (त्रिभक्ता) चरखण्डकानि भवन्ति ॥ ८ ॥

भा०—४ अंगुल, ४८ व्यंगुल नर्मदानदी के तीर में पलभा है । उससे दक्षिण प्रतियोजन एक एक व्यंगुल घटाने और उत्तर देश में प्रतियोजन एक एक व्यंगुल जोड़ने से तत्तत्स्थान में पलभा होती है । इस प्रकार अपने अपने देश की पलभा को ३ स्थान में रखकर क्रमसे १०, ८, १० से गुना करना, फिर केवल तृतीय-स्थानवाले गुणनफल में ३ का भाग देने से क्रम से तीन चरखण्ड होते हैं ॥ ८ ॥

अथ लङ्कोदयान् ततः स्वदेशोदयसाधनं चाह—

लङ्कोदया भुजगभानि नवाङ्कदस्रा
वह्निद्विकृष्णगतयश्चरखण्डकैः स्वैः ।
हीना विलोमविहिताः सहिता विलोमै-
र्व्यस्ताः पुनः स्वविषयोदयजा विनाड्यः ॥ ९ ॥

सं०—भुजगभानि २७८, नवाङ्कदस्राः २९९, वह्निद्विकृष्णागतयः ३२३ एते लङ्कोदयाः स्युः । ते स्वैश्चरखण्डैः हीनाः, पुनः विलोमविहिताः विलोमेन स्थापिता लङ्कोदयाः विलोमैश्चरखण्डैः सहिताः, मेषादिषड्राशीनां भवन्ति । ते च पुनर्व्यस्ताः तुलादिषड्राशीनां स्वविषयोदयजा विनाड्यः स्वदेशोदयपलानि भवन्ति ॥ ९ ॥

भा०—२७८, २९९, ३२३, ये क्रम से लङ्कोदयपल हैं, इनमें क्रम से

उपरोक्तरीति से साधित चरखण्डों को घटाना, फिर लंकोदय को विलोमविधि से रखकर उनमें उत्क्रम से चरखण्डों को जोड़ना तो ये मेषादि ६ राशियों के उदयपल होते हैं। फिर येही उत्क्रम से तुलादि ६ राशियों के स्वदेशोदयपल होते हैं ॥ ९ ॥

उदाहरण—लग्नप्रदीप के प्रथमभाग में स्पष्ट दिखलाया गया है।

अथ संक्रान्तिज्ञानात् स्पष्टार्कसाधनम्—

अष्टाशाः नगपञ्च सप्तविषयाः सप्तेषवोऽष्टेषवो
गोऽश्वाः शून्यरसाः कुषड्विधुरसाः कङ्गानि शून्यर्तवः।
गोश्वा मेषमुखेषु भास्करगतिर्निघ्ना दिनाद्यैर्गतैः
संक्रान्तेः खरसैर्हृताऽऽप्तलवयुग् यातर्क्षमिष्टो रविः ॥१०॥

सं०—अष्टाशाः ५८, नगपञ्च ५७, सप्तविषयाः ५७, सप्तेषवः ५७, अष्टेषवः ५८, गोऽश्वाः ५९, शून्यरसाः ६०, कुषट् ६१, विधुरसाः ६१, कङ्गानि ६१, शून्यर्तवः ६०, गोश्वाः ५९, इति मेषमुखेषु मेषादिराशिषु क्रमात् भास्करगतिः स्फुटसूर्यगतिः स्यात्। सा गतिः संक्रान्तेः (संक्रान्तिमारभ्य) गतैर्दिनाद्यैर्निघ्नी खरसैः ६० हृता, आप्तलवैर्युक् युक्तं यातर्क्षं मेषादिगतराशिः इष्टो रविर्भवति ॥ १० ॥

भा०—५८, ५७, ५७, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६१, ६१, ६०, ५९ ये मेषादि राशियों में स्पष्ट सूर्य गति हैं। संक्रान्ति से इष्टकाल पर्यन्त गतदिनादि से सूर्य की गति को गुनाकर ६० का भाग देने से लब्ध अंशादिकों को मेषादि गतराशिसंख्या में जोड़ने से इष्टकालिक स्पष्ट सूर्य राश्यादिक होता है ॥ १० ॥

रात्रौ भानुर्भार्धयुक्सायनांशस्तन्वर्कांशाः स्वोदयघ्नाः पृथक्ते।
त्रिंशद्भक्ताभुक्तभोग्याःपलादिस्ताद्दृक्कालोमध्यगस्वोदयाढ्यः॥११॥

सं०—श्लोकोऽयं षड्वर्गाध्याये व्याख्यातः द्र०(अ० ८ श्लो० ७)॥११॥

भा०—इसकी टीका प्रकरण ८ श्लोक ७ में देखो ॥ ११ ॥

अथेष्टकालवशाल्लग्नसाधनमाह—

भोग्यं रवेः समयमिष्टघटीपलेभ्य-
स्त्यक्त्वोदयैः सह पलानि तदुद्धृतानि।

त्रिंशद्गुणान्यगलितोदयभाजितानि
भागाद्यजादिगृहशेखरितं तनुः स्यात् ॥१२॥

सं०—रवेः पलात्मकं भोग्यं समयं 'तदग्रिमैः' उदयैः सह इष्टघटी-पलेभ्यः त्यक्त्वा, तदुद्धृतानि (तदुर्वरितानि) पलानि त्रिंशद्गुणानि अगलितोदयभाजितानि (अगलितेन अशुद्धोदयेन भाजितानि) भागादि यल्लब्धं तदजादिगृहशेखरितं (शेखरे शिरोभागे मेषादिराशियुक्तं) तनुर्लग्नं भवति ॥ १२ ॥

भा०—सूर्य के भोग्यांशवश भोग्यपल साधन कर अग्रिराशियों के उदय मान सहित उन भोग्यपलों को इष्ट घड़ी के पल में घटावे, जो शेष पल बचे उसको ३० से गुनाकर अशुद्धराशि के उदय का भाग देकर लब्ध अंशादिकों के ऊपर (आदि में) मेषादिराशि जोड़ने से लग्न हो जाता हैं ॥ १२ ॥

अथ होरानवांशज्ञानमाह—

नवांशमानं द्विशती कलानां सूर्योनलग्नस्य शरेन्दुभागे ।
वारादिहोरा विगता शरघ्ने षड्वर्गचिन्ता तु विनायनांशैः ॥१३॥

सं०—कलानां द्विशती नवांशमानं भवति । 'अत इष्टनवांशतः पूर्व-नवांशसंख्या शतद्वयगुणा अभीष्टलग्नकला भवितुमर्हन्तीति भावः' । अथ सूर्योनलग्नस्य शरेन्दुभागे पञ्चदशांशे शरघ्ने पञ्चगुणिते विगता वारादि-होरा (वारदेर्वारमारभ्य होरा) भवति । षड्वर्गचिन्ता तु अयनांशैर्विना कार्या ॥ १३ ॥

भा०—२०० कला नवांशप्रमाण है । अर्थात् जो नवांशलग्न में रखना हो उससे पूर्व नवांश संख्या को २०० से गुना करने से इष्टलग्न की कला हो सकती है । तथा लग्न में सूर्य को घटाकर उसके अंशों में १५ का भाग देकर लब्ध को ५ से गुनाकर वारेशादि क्रम से गत होरा होती है ॥ १३ ॥

अथ देशान्तर-चरान्तरपलान्याह—

अवन्तिपूर्वापरयोजनानि स्वपादहीनानि ऋणानृणे स्तः ।
पलानि देशान्तरयोश्चरार्धं त्रिंशद्द्युमानान्तरमर्धितं स्यात् ॥१४॥

सं०—अवन्तिपूर्वापरयोजनानि स्वपादहीनानि (स्वचतुर्थांशरहि-तानि) देशान्तरयोः पलानि भवन्ति, तानि क्रमेण ऋणानृणे स्तः, पूर्व-

देशान्तरपलानि ऋणानि, पश्चिमदेशान्तरपलानि धनानीत्यर्थः। तथा त्रिंशद्-द्युमानान्तरमर्धितं चरार्धं स्यात्। ततः "चरार्धदेशान्तरयुग्वियोगौ" इत्यादिषड्वर्गाध्यायोक्तप्रकारेण वारप्रवृत्तिर्ज्ञेया॥ १४॥

भा०—उज्जयिनी से पूर्व और पश्चिम देशान्तर योजन में अपना चतुर्थांश घटाने से देशान्तर पल होता है। वह पूर्व में ऋण, पश्चिम में धन समझना। तथा ३० और दिनमान के अन्तर को आधा करने से चरखण्ड होता है। यह दिनमान ३० से अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण समझना। फिर इसके द्वारा षड्वर्गाध्यायोक्त विधि से वारप्रवृत्ति साधन करना॥ १४॥

अथ प्रकारान्तरेण कालहोरामाह—

द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धितो वा स्युः कालहोरा दिनपप्रवेशात्।
प्राग्वच्छरघ्ना गणयेदनिंद्या क्रूरापि लग्ने शुभवेदवर्गे॥१५॥

सं०—दिनपप्रवेशात् द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धितो वा 'प्रकारान्तरेण' कालहोराः स्युः। ताः शरघ्नाःपञ्चगुणिताः प्राग्वत् 'वारेशादिक्रमात्' गणयेत्। शुभवेदवर्गे (शुभाः वेदाश्चत्वारो वर्गा यस्मिन् तत् शुभवेदवर्गं तस्मिन् तथोक्ते) लग्ने सति क्रूरापि होरा अनिन्द्या स्यात्॥ १५॥

भा०—वारप्रवेश समय से इष्टघटी को २ से गुनाकर ५ के भाग देने से लब्धि कालहोरा होती है। उसे ५ से गुनाकर वारेशक्रम से पूर्ववत् गणनाकर रव्यादि ग्रहों की होरा समझना। यदि लग्न के षड्वर्ग में ४ शुभग्रह के वर्ग हों तो पापग्रह की होरा भी अशुभ नहीं होती है॥ १५॥

अथ षड्वर्गान् कथयति—

राश्यंशाः शशिभूगुणेक्षणहतास्तिथ्यभ्रभूदिक्छरै-
र्भक्ता भार्धदृकाणनन्ददिनकृद्भागा गृहं यस्य यत्।
त्रिंशांशः सितसौम्यजीवरविजच्माजन्मनां व्युत्क्रमा-
दोजर्क्षेषु शरेषुसर्पमरुतः पञ्चेति षड्वर्गिका॥१६॥

सं०—श्लोकोऽयमष्टमाध्याये व्याख्यातः (द्र० अ० ८ श्लो० १३)॥

भा०—षड्वर्गप्रकरण के १३ वाँ श्लोक में इसकी व्याख्या देखो॥ १६॥

अथ सुखार्थं स्थूलदिनमानसाधनमाह—

मध्योदये सायनसूर्यभोग्यं सषड्भभुक्तं च युतं द्युमानम्।

इति स्मृतेयं शिशुबोधनाय श्रीकेशवार्केण विलग्नशुद्धिः ॥१७॥

सं०—मध्योदये (सायन-सूर्य सषड्भसूर्यान्तर्वर्तिराश्युदये) सायन-सूर्यभोग्यं, सषड्भमुक्तं (सायनस्य सषड्भस्य सूर्यस्य भुक्तं) च युतं सहितं द्युमानं दिनमानं भवति । इत्येवं श्रीकेशवार्केण शिशुबोधनाय बालबोधाय इयं विलग्नशुद्धिः स्मृता कथिता ॥ १७ ॥

भा०—सायन सूर्य और सषड्भसायन सूर्य के मध्यवर्ती राशियों के उदययोग में सायन सूर्य के भोग्य पल, और सषड्भसूर्य के भुक्तपल जोड़ने से दिनमान होता है । इस प्रकार बालकों के बोध के लिये श्रीकेशवार्क दैवज्ञ ने लग्नशुद्धि अध्याय को बनाया ॥ १७ ॥

श्रीकेशवार्केण कृते विवाह-वृन्दावने द्व्यङ्कनवेन्दुतुल्ये ।
श्रीविक्रमाब्दे लिखितात्र टीका सीतादिरामेण वसन्तलक्ष्मीः ॥

इति श्रीकेशवार्कविरचिते विवाह-वृन्दावने मिथिलादेशस्थचौगमा-निवासि-काशीस्थसंन्यासिसंस्कृत-पाठशालाध्यापक-ज्यौतिषाचार्य-पण्डित-श्रीसीतारामशर्मकृता वसन्तलक्ष्मीनाम-संस्कृतभाषाटीका सम्पूर्णा ।

शुभम् ॥